

तीसरा अध्याय

दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय
अध्ययन

दलित कविता का वस्तुपक्ष : समाजशास्त्रीय अध्ययन

दलित कविता के वस्तुपक्ष को समझने से पहले हमें मुख्यधारा कविता का वस्तुपक्ष तथा दलित कविता के वस्तुपक्ष में क्या अंतर है? यह समझना समीचीन होगा।

कवि और काव्य संस्कृति-निष्ठ जागृत समाज की अत्यन्त परिचित संज्ञाएँ हैं। ऋग्वेद में 'कवि' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हैं। उन अर्थों से मानव के आदि समाज में कवि की महिमा पर प्रकाश पडता है। "कवि अग्नि है, कवि सूर्य है, कवि सोम है, कवि में धावी है, अनुचान (वेदज्ञ, वेद मंत्रों का गायक) है और क्रान्तदर्शी है। उपनिषद् युग में फिर वही कवि ब्रह्म बन गया। आज कल हम जिस कर्म में 'कवि' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसकी बहुत कुछ संगति अनुचान अर्थ से भी है। अनुचान से ही मिलते-जुलते अर्थ स्तोता -स्तुतिगायक में भी 'कवि' शब्द प्रयुक्त हुआ"।^१

भारतीय काव्यशास्त्र का आरंभ सामान्यतः भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से माना जाता है। जैसे अनेक भारतीय आचार्यों ने काव्य को अपने -अपने ढंग से परिभाषित किया है। आचार्य भामह का कहना है -'शब्दाथो सहितौ काव्यम्'^२ अर्थात् शब्द और अर्थ से युक्त रचना को काव्य कहते हैं। आचार्य वामन के अनुसार-

“काव्यं ग्राह्यं अलंकारात्

सौन्दर्यमलंकार सदोषगुणालंकार हानादाभाभ्याम्”^३

१ डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, *आचार्य दण्डी एवं संस्कृति काव्यशास्त्र का इतिहास दर्शन*, पृ. ४६.

२ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*, पृ. २५. (से उद्धृत)

३ वही

अर्थात्- काव्य अलंकार से ग्राह्य होता है। सौंदर्य ही अलंकार है। वह 'काव्य' गुणालंकार के ग्रहण तथा दोष के परित्याग से युक्त होता है।

आचार्य विश्वनाथ का कहना है- 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्'^१ अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य कहलाता है। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार- 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'^२ अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से हमें पता चलता है कि ओज, प्रसाद, माधुर्य इन तीनों गुणों का समन्वय रूप ही काव्य कहलायेंगे। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने भी कविता के लिए अनेक परिभाषाएँ दी हैं।

पी. सिडनी ने कहा है कि 'कविता तो अनुकरण की कला है। या इसे रूपक की भाषा में कहा जाय तो वह बोलता हुआ चित्र है। उसका उद्देश्य है शिक्षा और आनन्द देना'^३ विलियम वर्ड्सवर्थ के अनुसार 'कविता सम्पूर्ण ज्ञान की सांस और सूक्ष्मातर चेतना है। कविता शक्तिशाली भावोद्द्वेगों की कृत्रिम अभिव्यजना है।'^४ एम. टी ने कविता को साहित्य रचना का वह प्रकार मानते हैं। जिसका तात्कालिक उद्देश्य आनन्द देना है, सत्य नहीं'^५ ड्राइडन का मत है कि "कविता आनन्दानुभूति के सहारे ही शिक्षा दे सकती है। वह कवि की सर्वाधिक सफलता इस बात में मानता है कि वह

१ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*, पृ. २८. (से उद्धृत)

२ वही, पृ. २८.

३ वही, पृ. २१.

४ डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी, *काव्यशास्त्र: भारतीय एवं पाश्चात्य*, Poetry is the spontaneous over flow of powerful feelings, p. 5.

५ वही, Poetry is the emotion for the purpose of immediate pleasure through the medium of beauty, p. 5.

आत्मा पर प्रभाव डाले और श्रोता के मनोभावों को उद्वेलित करने में समर्थ हो।”^१ पी. वी. शैली के अनुसार “व्यापक अर्थ में कविता को हम कल्पना की अभिव्यक्ति कह सकते हैं, क्योंकि वह सदा आनन्द से संयुक्त रहती है।”^२

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है ‘जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं’।^३ महादेवी वर्मा के अनुसार ‘कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे कैसे ही, भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं’।^४

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह व्यक्त हो रहा है कि मुख्य धारा कविता के आस्वादन, रस, आनंद कल्पना को ही बल देते हैं। इनकी कविताएँ सहानुभूति से युक्त हैं। धीरोदात्त व्यक्ति ही इसका नायक है। मुख्यधारा कविता समाज के वर्चस्ववादी पक्ष को ही लिया है। ये पूरे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, समाज की वास्तविकता को अनदेखा किया है। उनके काव्य सिद्धान्त दलित कविता के विश्लेषण में लागू करने में स्वाभाविक रूप से दिक्कत रहेगी। भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय के एक सौ पच्चीसवाँ श्लोक में स्पष्ट कहा है कि “जो व्यक्ति यथाविधि और यथाशास्त्र पूजा करेगा, वह शुभ फल प्राप्त करेगा और अंत में स्वर्ग लोक जाएगा”^५। यह मनुवादी विचार है तथा स्वर्ग

१ डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी, *काव्यशास्त्र: भारतीय एवं पाश्चात्य*, Delight is the chief, if not the only end of poesy, instruction can be but in the second place, for poesy only instrults as a delights, p. 25-26.

२ वही, पृ. २२

३ डॉ. विजयपाल सिंह, *भारतीय काव्यशास्त्र*, पृ. ३०. (से उद्धृत)

४ वही. पृ. ३१.

५ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, *नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपकम्*, पृ ५६

प्राप्ति की अवधारणा मनुवादी मूल्य है, जिसके बल पर दभंग जातियाँ और वर्चस्ववादी समुदाय सदियों तक उत्पीडन का अमानवीय कार्य कर रहे हैं। उस समय के वर्चस्ववादी विचार धारा के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में उपर्युक्त प्रकार के विचार ही देखने को मिलता है। जिसमें समाज के शूद्र जाति या असुर कहने वाले अन्यान्य जाति को समाज में कोई स्थान नहीं है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संदर्भ में काव्य/नाटक के उद्भव और विकास के संदर्भ में वर्ग विशेष के खिलाफ नस्लीय भेद भाव और हिंसा की वर्चस्ववादी राजनीति रही है। मनुस्मृति में भी ये स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शूद्र यदि ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करें तो राजा उसकी कमर पर दाग देकर देश से निकाले अथवा चूतड़ को चिन्ह के लिए दाग दे”^१

अतः दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में वस्तुपक्ष को उस दृष्टि से देखना चाहिए जिस दृष्टि से दलित जैसे अन्यान्य समाज देखते हैं। जिसमें सांस्कृतिक प्रतिरोधी स्वर प्रमुख रहेगा।

३.१ दलित कविता का वस्तुपक्ष

दलित कविता अपने समय और समाज का चित्रण सच्चाई के साथ करती है। समाज के हर एक व्यक्ति, परिवार, व्यवस्था, घटना आदि दलित कविता की वस्तु हो सकता है। दलित कविता के वस्तुपक्ष का विवेचन काव्य के शास्त्रधर्मी दृष्टि से करना उचित नहीं लगता है। आज के संदर्भ में दलित शब्द आधुनिक स्वत्व बोध निर्माण के साथ जुड़ा हुआ शब्द है। दलित कविता का विषय भारतीय एवं वैश्विक संदर्भ में अलग-अलग होते हैं। दलित कविता के विषय की भावभूमि यद्यपि एक जैसे होने पर भी अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। दलित कविता की वस्तु में गरीबी, पीडा, शोषण तथा अस्पृश्यता आदि है। वह दलित या पीडित जनता का है इसलिए ये

१ प्रवीण प्रलयडकर, मनुस्मृति (अनु)- अध्याय १०, श्लोक २८१, पृ- ८५५

सब दलित कविता के वस्तु पक्ष में होना स्वाभाविक ही है। दलितों का अपना एक इतिहास है, संस्कृति है, उनका अपना एक प्रतिरोधी संस्कार है। लेकिन आधुनिक-सामाजिक संदर्भ में अशिक्षित होने पर वह अपने इतिहास एवं संस्कृति को पहचानने में असमर्थ होते हैं। दलित कविता के वस्तु पक्ष में अपनी अस्मिता को पहचानने की प्रक्रिया प्रमुख है। अतः दलित कविता या साहित्य इस तरह के मूक नायकों की वाणी बन जाती है। दलित कविता हृदय के सहज भाव या नैसर्गिकता से उत्पन्न होती है और कम शब्दों में समाज में अधिकतम अभिव्यक्त कराती है। इसकी वस्तु शास्त्रीय वैयाकरण से हटकर एक दलित की अपनी खुद की बात कहते हैं। समाजिक असमानता के कारण वे अपनी बात को (वस्तु) कहने के लिए मजबूर हुई है। यह वस्तु उनके खुद के जीवन के कष्ट, दुःख, दर्द आदि भावनाओं के अनुभवों से फूटती है। ऐसी रचनाओं में जीव-ताल है, नैसर्गिक-लय है, अलंकार है तथा अनुभवजन्य कठोर सत्य है। दलित कविता के वस्तु पक्ष के केन्द्र में अन्य विषयों के साथ ग्रामीण जीवन के उपेक्षित/बहिष्कृत वर्ग के साथ-साथ महानगरीय सभ्यताओं की धूमिल तस्वीरें भी हैं। दलित समाज की वेदनाओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने में हिन्दी के दलित कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए उसका नियम भी उनका अपना होता है जैसे मिख्यैल बक्तिन के 'कार्निवल सिद्धान्त' में कार्निवल का अपना नियम रहता है।

भारत के सभी हिन्दू समुदायों में निम्न स्तर के लोगों को अछूत या अस्पृश्य माना गया है। वे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। इस तरह के अछूत या अस्पृश्यों को 'दलित' नाम से पुकारा जाता है। हिन्दू अछूत अनेक जातियों एवं उपजातियों में बँटे होने के कारण उनमें आपसी समानता एवं भाई-चारे का अभाव है। इन जातियों और उपजातियों में बन्धुत्व, विवाह सम्बन्ध, नातेदारी आदि न होने के कारण सैद्धान्तिक या व्यावहारिक दृष्टि से वे एक बंद सामाजिक व्यवस्था में बाँधी हुई है। ऐसी व्यवस्था में सदियों से अछूतों की सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति

दयनीय रही है। स्पष्ट है कि इसका मूल कारण वर्ण व्यवस्था में केन्द्रित भारतीय समाज है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से ही दलित जीवन के ऐतिहासिक संदर्भ, सांस्कृतिक प्रतिरोध के विविध आयाम तथा अन्त्यज की अस्मिता की सही अभिव्यक्ति संभव हो सकती है। भारतीय समाज की असमानता के मूल में वर्ण, जाति, अस्पृश्यता के तत्व ही प्रमुख रहे हैं। स्वाभाविक है कि इन तत्वों के खिलाफ प्रतिरोध प्रस्तुत करना दलित कविता के वस्तु पक्ष के केंद्र में रहेगा।

३.१.१ दलित कविता में वर्ण व्यवस्था : प्रतिरोधी स्वर

हमेशा दबाये गये जो समाज है उसके अन्तर एक चिंगारी रहती है। उनके स्मरण में अपने पूर्वजों की खोये हुए स्वत्व की याद रहती है। उनकी स्मृतियों में अपनी अस्मिता और सत्ता का बोध ही प्रतिरोधी स्वर का मूलाधार है। इस प्रतिरोधी स्वर का एक ऐतिहासिक क्रम है। उसकी ओर आचार्य अच्युतन जी ने संकेत किया है। “वर्चस्ववादी परंपरा के साथ सांस्कृतिक प्रतिरोध देश के लघु पंपराओं के वाहक हमेशा करते आ रहे हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में आर्य तथा आर्य पूर्व लोगों के संघर्ष, इन्द्र तथा नागाधिपति शंबर के बीच के संघर्ष से लेकर भक्तिकालीन अंडाल, कबीर, रैदास आदि संतों में तथा संवतंत्रता आन्दोलन के समय के चुहार विद्रोह, चान्नार आन्दोलन, महार आन्दोलन आदि को इन लघु पंपराओं के सांस्कृतिक प्रतिरोध ही मान सकते हैं।”^१

आदिवासी तथा दलित जन-समाज इस भूमि के जल- जंगल के स्वामी थे, जिनको कालांतर में अन्त्यज बना दिया है। अतः उनके प्रतिरोधी स्वर के सांस्कृतिक पक्ष का भी महत्व है। स्वाभाविक है कि यहाँ प्रतिरोध अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह और समता के लिए आह्वान भी है। हिन्दू समाज

१ Folklore telling and retellings: Sahitya Akadami seminar में प्रस्तुत प्रपत्र, २४-२६, February, 2017

में लोगों की योग्यता का तटस्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता। भारतीय समाज में लोगों की योग्यता के मूल्यांकन का मानदण्ड जन्म, वर्ण, जाति और धर्म के आधार पर तैयार होते हैं। जब कि बहुत पहले से ही तिरुकुरल में तिरुवल्लुवर चंडालत्व को नहीं मानते बल्कि इसे स्वभाव जन्य मानते हैं। स्वभाव के अनुसार ही एक आदमी श्रेष्ठ या निकृष्ट हो जाते हैं। लेकिन बाद में ब्राह्मणवादी सोच इस विचार को उलट फेर कर दिया। जिसके विस्तार से अध्ययन दूसरे अध्याय में कर चुके हैं।

अतः कोई शक नहीं है कि वर्ण, जन्म, जात और कर्म के आधार पर समाज को बाँटना या इन तत्त्वों के आधार पर सामाजिक संरचना की निर्मिति वास्तव में ब्राह्मणवादी सोच या वर्चस्ववादी राजनीति का प्रतिफलन है। क्योंकि पुरुष सूक्त या मनुस्मृति के पहले भारत में ऐसा भी एक समाज था जहाँ वर्ण, जात और कर्म के आधार पर कोई असमानता का वर्णन नहीं मिलता है। बल्कि एक समता-दर्शन के लिए पर्याप्त विवरण मिलता है। उस समय के समाज का विभाजन वैज्ञानिक एवं भौगोलिक दृष्टि से हुआ करता था। दक्षिण के संघकालीन कृतियों में इस प्रकार के समाज की ओर संकेत है- “कुरवन, इडयन, मरवन, पाणन, पुलयन आदि अनेक वर्ग के लोग दलित रहे थे। राज्याधिकार कुरवर को है, पाणन पंडित है, मरवन वीर योद्धा है, वेल्लान कर्षक आदि वर्गों को अपने कर्मों और भौगोलिक आधार पर जाने पहचाने लगे थे।”^१ इस प्रकार के समाज का चित्रण सिंधु-घाटी सभ्यता के इतिहास में भी है। मानवजाति का प्रथम सभ्यता है सिंधुघाटी सभ्यता। यहाँ का राजा शंबर शायद नाग संस्कार का पहला राजा होगा। मोहनजोदारो, हडप्पा की संस्कृति की सामाजिक संरचना में भी कोई भेद-भाव देखने को नहीं मिलता। नाग संस्कृति के पूरे इतिहास पढ़ने पर ये बात स्पष्ट हो जाती है। “ऋग्वेद के प्रख्यात वृत्तासुर युद्ध तथा राजा शंबर के युद्ध इसका प्रमाण हैं।”^२ बात स्पष्ट है कि

१ कवियूर मुरली, पुरनानूर एक अध्ययन, पृ. २२७-२२८.

२ पु.श्री. सदार, सिंधु-घाटी सभ्यता का इतिहास, पृ. ४-५.

आर्यपूर्व समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचार नहीं था। संघकालीन कृतियों में 'पंचमहाकाव्य' की प्रमुख विशेषता है। चिलपतिकारम, मणिमेघला, जीवकचिन्तामणि, वलैयापति, कुण्डलकेशी, ये पाँचों मिलकर पंचमहाकाव्य नाम से जाना जाता है। "चिलपतिकारम में पंचग्रामी नामक महाब्राह्मणों तथा तिरुत्तंगाल नामक उनके गाँव का उल्लेख मिलता है। इस गाँव में दूसरों के लिए प्रवेश मना किया था। सामाजिक संरचना के संदर्भ में पूरे इतिहास में 'मना है' ऐसा एक शब्द हम इस गाँव के आसपास से सुना है। ऐसा माना जाता है कि पंचमहाब्राह्मणों से छुआछूत की शुरुआत हुई होगी। अछूतापन लगभग १८०० वर्ष पुराने से शुरु हुई थी।"^१ आज भी यह अछूतापन पूर्ण रूप से भारतीय भारतीय समाज से हटाया नहीं है।

अतः यह स्थापित हो जाता है कि मनुस्मृति के बहुत पहले भारत में ऐसा एक समाज था जहाँ पर कोई वर्ण जात का भेद भाव नहीं था। दलित समाज को जो मुख्य धारा समाज जात के नाम पर अस्पृश्य मानते हैं उन्हें उसी पुरानी पीढ़ी के वंशज कह सकते हैं। सामाजिक कारणों से वर्चस्ववादी राजनीति ने उसे दलित बना दिया है। वर्ण-व्यवस्था का विरोध दलित कवियों के साथ-साथ दलित समाज भी करता है। आधुनिक काल में इसकी शुरुआत डॉ. बाबा साहब अंबेडकर तथा महात्मा फुले ने की थी। वह हिन्दू धर्म ग्रन्थों की निंदा तक ही सीमित नहीं रही, उससे कई आगे निकल चुके थे। २४ दिसंबर १९२७ भारत के इतिहास में एक अविस्मरणीय दिन है, क्योंकि उसी दिन बाब साहेब ने सार्वजनिक रूप में मनुस्मृति जला दी। उन्होंने ही भारत के लिए एक अच्छा संविधान भी बनाया। दलित कविता का मूल स्वर ही वर्णव्यवस्था का विरोध है। जिसके कारण आज भी कुछ दलित वर्ग को समाज से हट कर जीना पड़ रहा है। इसलिए दलित कविता का वस्तुपक्ष के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में स्वाभाविक रूप से वर्ण, जाति तथा अस्पृश्यता का विवेचन संगत लगता है।

१ कवियूर मुरली, *पुरनानूरु एक अध्ययन*, पृ. ६३.

३.१.१.१ वर्ण

पहले ही हम ने संकेत किया है कि वैदिक संस्कृति में ही समाज में वर्ण विभाजन की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ था। यही वर्णव्यवस्था जातिवाद एवं छुआछूत की जननी है। बताया गया है कि सबसे ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सबसे नीचे शूद्र है। शूद्र का धर्म बाकी तीनों वर्णों की सेवा करना है। उल्लेखनीय है कि इस वर्णव्यवस्था के बाहर भी कुछ जातियाँ हैं जिसे आदिम जनता कह सकते हैं। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने वर्णव्यवस्था को समाज में असमानता एवं अन्याय का मूलाधार मान लिया था, इसलिए उसका विरोध किया। वर्ण के संबन्ध में विस्तार से दूसरा अध्याय - 'दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि' में विश्लेषण किया गया है।

हिन्दू धर्म और वर्ण-व्यवस्था के विषय में कवि नवेन्दु महर्षि का मत उल्लेखनीय है - "हिन्दू धर्म, जो मानवता को पूरे तौर पर खारिज करता है। जिसका उद्देश्य मनुष्यता मात्र को मानवता के पद से डिगाना है। यह धर्म के नाम पर खुल्लम- खुल्ला, धोखा-धड़ी है। जिसकी तमाम कोशिशें हज़ारों- हज़ार सालों से देश के भोले-भाले बहुसंख्यक दलित समाज को शोषित संत्रस्त और दुःखी बनाने की रही है। दुनिया में जितनी भी तरह की अपारदर्शिताएँ, नृशंसताएँ, क्रूरताएँ, दुष्टताएँ, नीचताएँ और हरामखोरियां हो सकती हैं, इन सबको एक जगह इकट्ठा करके नाम दिया गया 'वर्णव्यवस्था'। यही कारण है कि सवर्णों को उससे अत्यधिक प्रेम है और दलितों को अत्यधिक घृणा"।^१ नवेन्दु महर्षि की कविता इसका प्रमाण है। उन्होंने 'जंग' और 'हिन्दुत्व का सार' नामक कविताओं में वर्णव्यवस्था के प्रति घोर प्रतिरोध व्यक्त किया है-

१ नवेन्दु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ७

“रोटी की/ न भात की
 जंग यह तो है/जात की”^१ (जंग)
 “मानवता जिस जगह पर/खतम होती है
 “हिन्दुत्व वहाँ से/शुरु होता है
 हिन्दुत्व और मानवता
 पर्यायवाची शब्द नहीं बल्कि/विलोम शब्द है”^२ (हिन्दुत्व का सार)

प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म में मानवता का स्थान नहीं के बराबर है।

आधुनिक दलित कविता के क्षेत्र में अनेक ऐसे जाने माने कवि हैं, जो अपनी रचनाओं से वर्ण एवं जात के खिलाफ दलित अस्मिता को जगाने का कार्य कर रहे हैं। कवि एन. आर सागर के अनुसार वर्ण व्यवस्था ऐसा औजार है जिससे दलितों का शोषण किया गया है। ब्राह्मणवाद इस शोषण की धुरी रही है-

“तेरा ओछी जात कुजात-कमीने ब्राह्मण बेईमान
 तू ढोंगी-कपटी-पाखण्डी,
 क्रूर-कुकर्मी-कुटिल शिखण्डी,
 शीलहीन, बदचलन बने तू फिर भी श्रेष्ठ महान”^३

वर्ण व्यवस्था के आधार पर शोषण करनेवालों को शिकारी मानते हुए श्यौराजसिंह बेचैन कहते हैं-

“आँख में/अपराधियों को/तैरते हैं चित्र
 वह शिकारी/आज का अभियुक्त

१ नवेंदु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ६६

२ वहीं, पृ. १११.

३ एन. आर. सागर, *आज़ाद है हम*, पृ. ३९.

दण्ड भोगे/ बिन रहा/ वह मुक्त”^१

कंवल भारती वर्ण व्यवस्था के पोषकों से तर्कपूर्ण लहजे में कुछ प्रश्न ढागते हैं कि यदि ऐसा होता तो तुम्हारी निष्ठा क्या होती?

“मल-मूत्र साफ सरना
कपड़े धोना, बाल काटना
हमारे खेतों घरों में दास कर्म करना
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती ”^२

‘मनुस्मृति’ नामक कविता में नामदेव वर्णव्यवस्था के मूल कारण मनुस्मृति को इशारा करते हुए लिखते हैं-

“ब्राह्मणवाद का मतलब स्मृति
सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मतलब स्मृति
शोषक समाज का मतलब स्मृति”^३।

गाँव में वर्णव्यवस्था का कुरूप चेहरा अभी भी मौजूद है, ग्रामीण परिवेश में व्याप्त जातीय भेद-भाव दलित वर्ग को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। अपने गाँव के बारे में डॉ. सुखवीर सिंह बयान कर रहे हैं-

“तू अभी भी एक पहाड़ की तरह
जड़ है वहीं का वहीं ठहरा हुआ
और मैं पानी की तरह बह रहा हूँ लगातार।

१ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रॉच हूँ मैं*, पृ. २१.

२ रमणिका गुप्ता, *अब मूरख नहीं बनेंगे*, पृ. १५.

३ विमल थोरात, *सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*- पृ. १०६.

.... पर मैं तेरा अहसानमन्द हूँ/तो सिर्फ इसलिए
कि तेरे से मैं ने सीखा/बगावत का पहला सबक.....”^१

डॉ. प्रेमशंकर की कविताओं की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी बात को उत्तेजना के साथ कहते हैं। वे ‘दलित कविता’ के स्थान पर ‘अम्बेडकरीय कविता’ कहना उचित मानते हैं। ‘वे सभ्य है’ उनकी चर्चित कविता है। इसमें कवि व्यवस्था के ऊपर प्रहार करते हैं-

“वे सभ्य है आदमी से/ हाथ मिलाने के बाद
हाथ धोते हैं, मांजते हैं/ और फिर
मुस्करा कर कहते हैं/ हम एक है
फिर हाथ दोते हैं। ताकि/ हाथ में आदमी की/‘जाति’ न छप गई हो”।^२

‘संसद तो सवर्ण है’- नामक कविता संग्रह में नवेन्दु महर्षि ने वर्तमान समय पर धर्म के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है उसका खुला चित्रण किया है। जहाँ-जहाँ पर दलितों ने धर्म परिवर्तन किया है, वहीं-वहीं पर हिन्दुवादी ताकतों ने उनका उत्पीडन किया है। क्योंकि वे जानते हैं कि यदी इस देश का अठाईस करोड़ दलित किसी अन्य धर्म में दीक्षित हो जाएगा तो हिन्दू भारत में ही अल्पसंख्यक हो जाएँगे। इस सच्चाई को नवेन्दु महर्षि ने ‘एक अपाजिह धर्म’ नामक कविता में यँ व्यक्त करते हैं-

“जिनके अलग होने का एहसास/इसे उस दिन होगा
जिस दिन इसे/ एक धर्म बन कर
दुनिया में जीना पड़ेगा/और तनिक सहारे भर के लिए
बैसाखी तक नसीब नहीं होगी/उस दिन यह हिन्दुत्व

१ डॉ. सुखवीर सिंह, *बयान बाहर, दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. १७१.

२ डॉ. प्रेमशंकर, *रोटी की भूख तक*, पृ. १४.

दुनिया का/ सबसे निरीह धर्म होगा”।^१

जयप्रकाश कर्दम हमें चेतावनी देते हैं कि देश में अपनी सत्ता और साम्राज्य स्थापित करने के लिए सवर्ण लोग समाज में जातीयता को जिन्दा रखेंगे। इससे देश में इनका साम्राज्य स्थापित हो सकता है। वे अपने स्वार्थ के लिए साम्राज्य में वर्ग-भेद और साम्प्रदायिकता का ज़हर फैलायेंगे, जिससे वह महान बने और समाज जाति और वर्ण के चक्रव्यूह में फँसा जाए। कवि ‘भारत’ नामक कविता में कहते हैं-

“अपनी सत्ता साम्राज्य को
सुरक्षित रखने के लिए/मिटाएँगे वे मुझे ही
ज़िन्दा रखेंगे वे वर्ण और जाति
वर्ण भेद और साम्प्रदायिकता”।^२

स्पष्ट है कि ब्राह्मणवादी सोच भारतीय सामाजिक संरचना में वर्ण एवं जाति को बनाये रखना चाहती है। हिन्दी दलित कविता समता में विश्वास करती है। इसलिए दलित कवि भेद-भाव के पक्ष में नहीं समता और भाईचारे के पक्ष में हैं।

३.१.१.२ जाति

धर्म और जाति एक दूसरे के साथ चिपक कर रहते हैं। व्यक्ति चाहे कितनी भी उच्च शिक्षा और पद क्यों न हासिल कर ले किन्तु जाति और धर्म उसका पीछा कभी नहीं छोड़ता। वह जहाँ बैठता है जाति उसके साथ बैठती है, जहाँ उठता है जाति उसके साथ उठती है। ये सदियों से दलितों का भोज बना है। इसका खुलासा वर्णन असंघ घोष अपनी ‘धर्म! तुम्हें तिलांजलि देता हूँ’ शीर्षक कविता में कहते हैं-

१ जयप्रकाश कर्दम (सं.), *दलित साहित्य वार्षिकी*, २००४, पृ. २०२.

२ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ. २०-२१.

“धर्म! / तुम भी एक हो / मेरा पैदा होने के बाद
जाति के साथ / चिपकने वाले।
कमबख्त जाति को / मैं नहीं त्याग सकता
यह सदियों पूर्ण से / मेरे पुरखों के साथ / थोपी गई हैं”^१

बदलते समय में जातियों की जटिलताएँ बढ़ती गई, जातियों में से अनेक उपजातियों का जन्म हुआ। उच्च वर्ग (जाति) समाज में मान, मर्यादा, रहन-सहन में दलितों के श्रम जन्य सुख- सुविधाओं को भोगता रहा। दलित कितना भी योग्य क्यों न हो वर्ण व्यवस्था में उच्च जाति की श्रेष्ठता ही सिद्ध की जाती रही है। इसलिए दलित कविताओं में वर्ण एवं जाति के प्रति असहमति और विरोध मिलता है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर की कविता ‘गोरख धन्धा’ शीर्षक की पक्तियाँ हैं-

“इनसानियत की नहीं कोई कीमत
और न कोई पदवी है सद्चरित्र की
जात-पात के सांचे में ढलकर
यहाँ परख होती है मानव की / यहाँ
आदर -निरादर भी बंटता है
जात-पात की तराजू से”^२

सी. बी. भारती ‘मेरी’ जगह अपने आपको रखकर सोचने के लिए कहती हैं। दलितों के साथ जो अत्याचार हो रहा है, अगर वह हमारे साथ हुआ तो हम क्या करेंगे?

“अपने देश में उल्लू के पट्टों ने
बना दी हैं आदमियों की जातियाँ

१ असंघघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं*, पृ. १७.

२ डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, *सिंधुघाटी बोल उठी*, पृ. ३८.

जिससे एक प्रतिष्ठा पाता रहे
दूसरा अन्दर ही अन्दर तिलमिलाता व सकुचाता रहे”^१।

गुरु हमेशा पीने के पानी के लोटे को कभी भी अस्पृश्यों का हाथ लगने नहीं दिया। उन्होंने पीने का पानी केवल सवर्ण छात्रों द्वारा ही भरवाया। जयप्रकाश कर्दम की ‘वर्णवाद का पहाड़ा’ कविता में जातीयता का दर्शन मिलता है-

“अपने पीतल के लोटे को
हमारे हाथ कभी नहीं लगने दिया/लोटे में पानी सदैव
सवर्ण छात्रों से ही भरवाया
मास्टर जी!
हम शुक्रगुज़ार हैं कि तुमने/हमें पढ़ाया
प्रगति का रास्ता दिखाया
लेकिन समता के मार्ग पर तुम/खुद नहीं चल पाए
हमने रखा तुम्हें/वर्ण और जाति से ऊपर
पर नहीं उठ पाए तुम अपनी/जातीय अहंमन्यता की संकीर्णता से”^२।

जाति के नाम पर थोपी जा रही अमानवीय व्यवहार को दलित वर्ग ने सहा है। उनके समस्त दुःखों के मूल में वर्ण एवं जाति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ‘वे भूखे हैं’ नामक कविता के माध्यम से दूसरों का खून चूसनेवाला और हाशियेकृत वर्ग के हक को छीन कर जीनेवालों की ओर इशारा करते हैं-

“वे भूखे है/ पर आदमी का मांस नहीं खाते
प्यासे है/ पर लहू नहीं पीते/नंगे है

१ सी. बी. भारती, *आक्रोश*, पृ. ६०.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं*, पृ. २३.

पर दूसरों को नंगा नहीं करते
उनके सिर पर/छत नहीं है
पर दूसरों के लिए/ छत बनाते हैं”^१

जातिवाद पर प्रहार करते हुए ‘जाति’ कविता में कवि स्वर्ग जाने से इनकार करते हुए घोषणा करते हैं-

“स्वीकार्य नहीं मुझे/जाना, मृत्यु के बाद
तुम्हारे कल्पित स्वर्ग में/ वहाँ भी तुम
पहचानोगे मुझे/मेरी जात से ही।”^२

डॉ. देवेन्द्र दीपक, जातिवाद के शास्त्र पर वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। आज जातिवाद एक शास्त्र बन गया है। इसके चक्रव्यूह में दलित वर्ग मसल रहा है-

“हम पैदाइशी बौने नहीं थे,/ हमें बौना बनाया गया,
कभी यह तुम्हारे समाजशास्त्र की माँग थी,
कभी यह तुम्हारे अर्थशास्त्र की माँग थी
हम तुम्हारी दोनों माँगों को,
धर्मशास्त्र के नाम पर पूरी करते रहे।”^३

जयप्रकाश कर्दम ‘तिनका तिनका आग’ में कहते हैं कि हालत यह हो गई है कि दलित व्यक्ति भूख की अपेक्षा जातिगत अपमान, उपेक्षा और सांस्कृतिक शोषण से अधिक आहत है। वह अभी भी यही महसूस करता है कि भूख के गणित से जाति का व्याकरण ज्यादा दुरूह और गंभीर है।

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *बस्स! बहुत हो चुका*, पृ. ६६

२ वही, पृ. ७८.

३ डॉ. देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं*, पृ. ३२.

“कितना विकट होता है

भूख के गणित से/ जाति का व्याकरण”।^१

मोहनदास नैमीशराय की कविता है ‘फर्क तय करना है’ में उन्होंने दलित जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या को उठाया है कि सिर्फ जाति के कारण ही अपमान सूचक शब्द जो कल तक गांव और कस्बों में ही कहे जाते थे, अब महानगरों में भी क्यों कहे जाने लगे हैं-

“एक ही मनुष्य जाति के होने पर भी

जातिगत सम्बोधनों के आधार पर

कसैले से लगने वाले स्वर/कल तक जो गाँव और कस्बों के

परिवेश में सुनाई देते दे आज उजालों के प्रतीक

महानगरों में भी

वही जातिगत सम्बोधन के आधार पर कसैले से लगने वाले स्वर

सुनाई पड़ने लगे है।”^२

जब समाज में समता, सौहार्द, भाईचारे का संदेश फैलाना चाहता है तब इसके बीच बाधा बनकर आ जाता है जातिवाद। कवि गंगानिया इससे तंग आकर ‘तभी पहुँच पाएगा’ नामक कविता में कहते हैं-

“लेकिन/आवारा साँड सा/जातिवादी झौका

बार-बार/रौद जाता है इसे/अपने स्वरो से”।^३

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी*, २००४, पृ. १९७.

२ डॉ. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ.३.

३ ईशा कुमार गंगानीया, *हार नहीं मानँगा*, पृ. १४.

देश को प्रगतिशीलता के पथ पर आगे ले जाकर क्या फायदा जब वहाँ जाति की परेशानियों को दूर न करें। प्रगति के पथ पर जाति एक बाधा बन गयी है। डॉ. शत्रुघ्न कुमार, 'ये प्रगतिशील लोग' नामक कविता में लिखते हैं-

“जिद नहीं छोड़ी तुमने अभी भी
तोड़ी नहीं जंजीर जातीय उन्माद की
तो लगा तो अनुमान अंजाम की”^१

जाति एक रोग है। दलित वर्ग इस रोग से पीडित है। एक महामारी की तरह फैला जाता है। सूरजपाल चौहान 'रोको उसे' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

“जाति के रोग से पीडित/डाले फिरता है
गले में - छूत-अछूत की कण्ठी-माला”^२

डॉ. प्रेम शंकर जातिवाद पर प्रहार करते हुए घोषणा करते हैं-

“आदमी की जाति/मगरमच्छ सी सभी स्थानों पर खड़ी है,
सिर्फ अछूत को निगलने/ किसी ओर को नहीं
यही तो उत्तर आधुनिकता का जाति बोध है/मानव बोध नहीं”^३

रजनी अनुरागी ने 'नाम और जाति' नामक कविता में भारत की जातिवादी मानसिकता को व्यक्त किया है-

“शेक्सपियर ने कहा था/कि नाम में क्या रखता है
अगर वह भारत में पैदा होता/ तो ज़रूर जानता

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. २०.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर*, पृ. ७२.

३ कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १००.

कि नाम ही यहाँ सब कुछ है
यहाँ नाम में लगी होती है जाति”^१

उपर्युक्त कविताओं में जाति संबंधी अवधारणा को तीव्र रूप से स्पष्ट किया है। हिन्दु धर्म में जब तक वर्ण-जाति रहेगा तब तक यह धर्म मनुष्यता का विरोधी है।

३.१.१.३ अछूत/अस्पृश्य

अस्पृश्यता संबन्धी अवधारणा को भी दूसरे अध्याय में विस्तार से विवेचन किया है। वर्ण व्यवस्था के कारण ही मनुष्य- मनुष्य में भेद है। यही नहीं सवर्ण दलितों को मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं हैं। जबकि सब माँ की कोख से जन्म लेते हैं। सब की प्रजनन क्रिया एक ही जैसा है। यहाँ जन्म के अनुसार ही ब्राह्मण-शूद्र आदि भेद हो जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी प्रतिक्रिया ‘वह दिन कब आयेगा’ शीर्षक कविता में स्पष्ट किया है-

“मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन
कितने ताज्जुब की बात है
जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है”^२।

डॉ. श्यामसिंह ‘शशि’ ने ‘एकलव्य और अन्य कविताएँ’ नामक संग्रह में रामायण और महाभारत के पात्र ‘ऋषि शम्बूक’ पर कविताएँ लिखी हैं। शम्बूक जाति से अछूत होने के कारण उनके साथ अन्याय हुआ था। अतीत की इन घटनाओं को कवि व्यक्त करते हैं। उनके ‘तपस्वी’ शीर्षक कविता इसका उदाहरण है-

१ रजनी अनुरागी, बिना किसी भूमिका के, पृ. ९५.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, बरस! बहुत हो चुका, पृ. १०३.

“ऋषियों के रक्षक
 यह तुमने क्या किया- ऋषि को,
 तीर से मार दिया/पूर्णग्रहों से सधा
 निशाना उचूक था/ तपस्वी शायद
 शूद्र शम्बूक था।”^१

वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता ही व्यक्ति को व्यक्ति से दूर करती है, उनके बीच ऊँच-नीच का भाव पैदा करती है। इसी वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता के कारण भारतीय समाज में असमानता है। यदि समतावादी समाज की स्थापना करनी है तो सबसे पहले वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करना होगा। ‘आछूत’ शब्द से ही मानव के बीच कितना फर्क पड़ जाता है व्यवहार में, आचार में, विचार में। देवेन्द्र दीपक लिखते हैं-

“वह शब्द काफी था/ तुमने एक कोयल उठाया
 उस कोयले से एक काला वृत्त खींचा
 और वृत्त में/मुझे स्थापित कर दिया
 वह शब्द था अछूत/वह कोयला था अपेक्षा”।^२

छूआछूत ऐसी ज़हर है जो वातावरण को विषैला बना रही है। पुनर्जन्म की माया रचकर शोषण करने वालों से कवि ओमप्रकाश सवाल करते हैं । आदमी में ब्रह्म का अंश है तो आपस में ही भेद कैसे होते हैं?

“तुम्हारे रचे शब्द/तुम्हें डसेंगे साँप बनकर

X X X X X

१ डॉ. श्यामसिंह शशि, *एकलव्य और अन्य कविताएँ*, पृ. ५४.

२ देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं*, पृ. १४.

या फिर पुनर्जन्म की लालसा में
किसी डोम या चूहड़े के घर/ पैदा न हो जाए
चूहड़े या डोम की आत्मा/ ब्रह्मा का अंश क्यों नहीं
मैं नहीं जानता/शायद आप जानते हो.....”^१

सुखवीर सिंह व्यथित होकर कहते हैं कि हमारे देश में न तो अतीत सत्य है, न वर्तमान सत्य है और न भविष्य सत्य है, कुछ भी सत्य नहीं, यदि सत्य है तो यह कि अस्पृश्यता का काला साया देश को बुरी तरह से ढके हुए हैं-

“यहाँ न वर्तमान सत्य है। न सच है भविष्य
जो कुछ है, सिर्फ भूत है
इसीलिए आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा
आज भी/एकदम अछूत है”^२

‘अछूत’ नाम खुद दलितों का घाव है। इस घाव की पीड़ा इतनी तीखी है कि सवर्ण लोग ने उस घाव में बार-बार प्रहार करते हैं। कवि असंगघोष ‘काट डालूँगा उन पैरों को’ नामक कविता में अछूतों की पीड़ा को व्यक्त करते हैं-

“अछूत एक घाव है/ तुम्हारी ही दिया हुआ
जो नासूर बनकर/तेरी सड़ी वर्ण व्यवस्था से
असहनीय पीड़ा देता हुआ/ लगातार रिस रहा है”^३

अंबेडकरवादी कवि के पाँव धरती पर और मन अपने समाज से जुड़ा है। अछूतों के जीवन गाँव के बाहर, गंदी बस्ती और अंधेरा ही है। प्रो. दामोदर मोरे लिखते हैं -

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, शायद आप जानते हो, बस्स! बहुत हो चुका, पृ. १२.

२ सुखवीर सिंह, बयान बाहर, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. १७८.

३ असंगघोष, हम गवाही देंगे, पृ. ५६.

“उन्हें बनाया गुलाम/भगा दिया गाँव के बाहर
अछूत के नाम से किया विभूषित
वही अस्पृश्य भारत”^१

जातिवाद के विषाद से चिंतित होकर कवि पन्नीलाल निर्भीक ‘भ्रष्ट गढ़ों को मसल डालो’ नामक कविता में कहते हैं कि भारतीयों को जातिवाद से नहीं भारतीयता से जोड़ दो -

“जातिवाद के विषघर के दाँत, तोड़ दो
हर भारतीय को, भारतीयता से, जोड़ दो।
धर्म को दो गंदी राजनीति से बिदा
धर्म को देव और देवालयों पर छोड़ दो”^२

अछूत भारत के मूल वासी हैं। सवर्णों ने उन पर अत्याचार कर उनके अधिकार छीनकर उन्हें अछूत बना दिया। समाज को वर्ण के नाम पर बाँट कर उन्हीं को गाँव से बाहर कर उन्हें छूना क्या देखना तक पाप माना गया है। यहाँ कवयित्री ने अछूत की समस्या को निम्न रूप में चित्रित किया है-

“ये वे लोग है जो मुझे देख/नाक भौ सिकोडते हैं
और अपनी गोरी चमड़ी/ में ढके चलते हैं
अपना काला पानी/और सांस्कृतिक नीम पर
करते हमारी मिट्टी का सौदा/और पीछे पीछे की फुसफुस
और हमारे ही जीवन पर खडा कर/पूछते हैं हम से हमारी ही औकात”^३

१ दामोदर मोरे, *नीले शब्दों की छाया में*, पृ.७२

२ डॉ. जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य वार्षिकी २०००*, पृ.२१९.

३ निर्मला पुतुल, *ये वे लोग हैं*, कादंबिनी अगस्त, २००४, पृ. ७०.

शम्बूक शूद्र होकर भी तपस्या कर रहा था, तब राम ने शम्बूक की हत्या की। यानी व्यवस्था के विपरीत जा रहा है जिससे ब्राह्मण का बालक मरा है। यह सब जानते हैं कि यह एक षडयंत्र था शूद्रों के खिलाफ। इसका खुलासा चित्रण कंवल भारती अपनी 'शम्बूक' शीर्षक कविता में करते हैं-

“शम्बूक (हम जानते हैं)/तुम्हारी तपस्या से
ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था,
जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है।
मरा था ब्राह्मणवाद/ मरा था उसका भवितव्य”।^१

राजेन्द्र बड़गूजर का 'मनु का पाप' नामक कविता में अस्पृश्यता तथा मनु विरोध को ही केंद्र विषय बनाया है। वे कहते हैं-

“वही दो हाथ/वही दो पैर
वही दो आँखें/दराती लहने से कटने वाले
लहू भी लाल/फिर मैं अलग-थलग क्यों?
यही तो सदियों का सन्ताप है
निश्चय ही/यह मनु द्वारा किया गया पाप है।”^२

जाति के क्रूर व्यवहार को कवि ने अभिव्यक्त किया है। वे इनसान को पशु के समान देखने की व्यवस्था पर चोट करते हैं।

उपर्युक्त कविताओं की पंक्तियों से हमें पता चलता है कि दलित कविता का मूल स्वर वर्ण जाति तथा अछूत व्यवस्था के प्रति अपना प्रतिरोध स्थापित करना है।

१ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. २१४

२ राजेन्द्र बड़गूजर, *मनु का पाप*, पृ. १३.

सामाजिक संरचना को बदलने या परिवर्तन करने के लिए क्या करना है? इस प्रस्ताव के उत्तर के रूप में नवेन्दु महर्षि का 'धर्म परिवर्तन' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं-

“कदम-कदम पर/ हमारी अस्मिता को
घृणा के तीरों से/कोंचते हो।
तो फिर तुम/धर्म परिवर्तन करने से हमें
किस अधिकार से रोकते हो”^१

उल्लेखनीय है कि कवि बाबा अंबेडकर द्वारा किये गये धर्म परिवर्तन को मानते हैं इसलिए हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण, जाति, अछूतापन से मुक्ति पाने के लिए धर्म परिवर्तन को उचित मानते हैं।

३.१.२ दलित कविता का सामाजिक स्वर

बताया गया है कि साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए समाज में जो है उसका सही चित्रण साहित्य में भी मिलता है। दलित कविता का प्रमुख स्वर सामाजिक है। दलित कविता में समाज में व्याप्त गरीबी, पीड़ा और अमानुषिक-कुकर्मों का वास्तविक चित्रण मिलता है। दलित कविता के सामाजिक स्वर में, उपेक्षित, अपमानित, दलितों की पीड़ा, शोषण, जीवन, दरिद्रता, श्रम आदि अनुभवों की व्याख्या है। यहाँ दलितों की स्वानुभूति को वाणी दी गयी है। दलित कवियों में श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक संवेदना के एक ऐसे कवि हैं, जिनकी दृष्टि विशेषकर दलित समाज के प्रति गहन, सूक्ष्म और यर्थापरक रही है। 'हथेलियों में थमा सिर' शीर्षक कविता में उन्होंने साहित्यिक कलात्मकता के साथ जो सच लिखा है वह समाज की सामाजिक स्थिति का जीवंत दृश्य प्रस्तुत करता है-

१ नवेन्दु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. १०१.

“घुटनों पर टिकीं कुहनियाँ,
और हथेलियों में थमा सिर/ बेबस है वक्त के इस पड़ाव पर
जहाँ शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चुके हैं”।^१

१९७९ में पिपरा (बिहार) में १४ अछूतों की हत्या की गई थी। इस घटना के संदर्भ में ९ वर्ष बाद अर्थात् १९९८ में कवि श्री मंसाराम विद्रोही ने एक लम्बी कविता लिखी जिसकी प्रस्तुत पंक्तियाँ हैं-

“सामूहिक हत्या पिपरा की, देवली की अजब कहानी है।
साढुपर की दुर्घटना से, भारत की अविनि संहानी है”^२

इसके साथ ही कवि एक अन्य घटना को भी व्यक्त करते हैं -

“आन्ध्रा के उस दंगे की, जहाँ रामनापलों की लाशें
बदोलिपुरा की घटना है, जग गई जहाँ की कुश कासैं।
उन चार अछूतों की हत्या, कानोड़िपुरा है गठरी में
ग्यारह को जीवित भून दिया, बेलछी का क्रन्दन गठरी में”।^३

(क्या दलित तुम्हारी गठरी में?)

स्पष्ट है कि समाज में एक वर्चस्ववादी राजनीति की स्थापना करना ही इस सामूहिक हत्या के पीछे छिपा हुआ सत्य है। इस तरह के नर संहार समाज के दलितों एवं निर्बलों के साथ हमेशा होता रहता है।

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप*, पृ. १८.

२ मंसाराम विद्रोही, *दलित मंजरी*, पृ. १२.

३ वही, पृ. ११

यह एक सामाजिक समस्या है कि दलितों को आज भी इस धरती में जीने का अधिकार नहीं मिल रहा है। समाज की ऐसी हालत है जो मानव-मानव को न पहचानकर उसे मारना चाहता है- कवि असंगघोष कहते हैं-

“मैं बस जानता हूँ/शास्त्रों की जीभ
जो उगलती है आग/हमारे खिलाफ
शास्त्रों की दुहाई देती हुई”^१

जय प्रकाश लीलवान ‘समय की आदमखोर धुन’ नामक कविता में वर्तमान समाज का चित्रण यूँ करते हैं-

“सम्प्रभुताओं के कन्धों पर
बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के झण्डों को
जोर-जबरदस्ती से/ लहराए जाने के जश्न की
जोरदार तैयारियों का/ दशक और दौर है/आज का समय”^२

कांता भीमराव ‘दीदी तुम’ नामक कविता में दीदी से समाज की भलाई करने को कहती हैं-

“तुम कुआं बनो/किसी गांव का/जो ना ब्राह्मणों का हो
ना क्षत्रियों का हो/ ना वैश्यों का हो/ ना दलितों का हो
हो तो सबका हो”^३

१ असंगघोष, मैं ढूँगा माकूल जवाब, पृ. १३.

२ जयप्रकाश लीलवान, समय की अदमखोर धुन, पृ. ३५.

३ रजनी तिलक (प्र. सं.), समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, पृ. १८२.

कवयित्री दीदि के माध्यम से सब की भलाई करना चाहती है जो मनुष्यता का मूल भाव है।

राजकुमार वाल्मीकि राज 'सड़क से गुजरते' नामक कविता में वर्तमान समाज में अमीर और गरीबों की ज़िदगी का चित्रण किया है-

“मालिक की मार खाते हुए बच्चे
कार में बैठे गाने सुनते हुए बच्चे।
फाइव स्टार होटलों में खाते हुए लोग
फुटपाथ पर पकाते हुए लोग”^१

आज़ादी के दिनों में राष्ट्रीय एकता की बात ज़ोर पकड़ रहे थे जिसमें सतनाम आंदोलन, चौरा-चौरी आंदोलन, महाड आंदोलन, चान्नार आंदोलन आदि आंदोलनों की भूमिका रही थी। लेकिन आज दलित कवि पूछते हैं या सवाल करते हैं कि मनुष्यता के सामाजिक अधिकारों से वंचित व्यक्ति से राष्ट्रीय एकता की उम्मीद कैसे की जा सकती है? कवि श्यौराज सिंह बेचैन के शब्दों में देश की आबादी का एक बहुत बड़ा तबका महसूस करते हैं-

“दुनिया तो तुम्हारी है/ मैं मुल्क-बंदर
मेरा क्या है?/ निज देश में/ जैसे परदेसी
मेरे दिल की/कीमत खाक यहाँ
मेरे सपनों की/ ऐसी- तैसी/मैंने जिस्म/ अछूतों का पाया
मेरा जेहर है क्या/मेरा दिल क्या है”^२

१ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३१.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रॉच हूँ मैं*, पृ. ४४.

डॉ. धर्मवीर एक ऐसा जातिविहीन समाज और राष्ट्रियता का आग्रह करते हैं जो विवेकशील और वैज्ञानिक सोच पर आधारित है। वे उसकी कामना करते हुए कहते हैं -

“उसका मन विकासमान है क्या करें ?
पुराने बोझ को कहाँ ढोता फिरे ?
वह पूजारी के ईश्वर का द्रोही है
वह छापे तिलक जनेऊ का शत्रु है”^१

शंकर सोनाने का ‘किशोरीलाल की आत्महत्या’ कविता संग्रह में सोनाने के निजी विचार, आकांक्षा, आशा, सद्भावना की अभिव्यक्ति है। उनकी एक कविता में दलित समाज की वास्तविकता का चित्रण मिलती है-

“दलित वह है जो विवश हो जाता है/चमड़ा सिलने, कचरा साफ करने
मैला ढोने/दो जून की रोटी के वास्ते”^२

इसी प्रकार मलयालम में भी दलित जीवन के तीखापन को व्यक्त करने वाली कविताएँ हैं। जैसे श्री के. तंकप्पन का ‘अरथी उठाने वाले’ तथा ‘इतिहास’ । इन दोनों कविताओं को प्रो. अच्युतन ने अनुवाद किया है। इन कविताओं की कुछ पंक्तियाँ हैं-

“यह अरथी उतारने दो मुझे/नहीं तो
सड जायेंगे मेरे कंधे/निकलेगी बदबू..... !
अब इस राह से अरथी /उठाकर चलना मुश्किल है:
लडखडाकर गिर जाऊँगा मैं.....।”^३ (अरथी उठाने वाला)

१ रमणिका गुप्ता, चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, पृ. ११३.

२ मोहनदास नैमिशराय (सं.) ‘बयान’ मई, २०१०, पृ. ५३.

३ डॉ. अच्युतन (सं.) मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि, पृ. १३४.

“रसोई -मंदिरों को भी /मुखरित करता है/तो
ज़मीन्दार का वह उपेक्षित कृत्ता/ और/ रोग पीड़ित गुलाम
दोनों कोई पगडंडी रेंगकर,
संगठित होने की संभावनाओं को लेकर/एकजुट होते हैं।”^१ (इतिहास)

सच्चाई यह है कि अभिजात वर्ग दलितों को अपने काम के लिए इसतेमाल करते हैं, बाद में उन्हें फेंक देते हैं।

कवि शेखर अंबेडकरवादी कवि, चिंतक व समीक्षक हैं। ‘मेरे कुनबे के लोग’ संग्रह प्रकाशकीय में बताया गया है कि- कवि शेखर का कुनबा बहुत बड़ा है। इस कुनबे में विद्या का अभाव है एवं आर्थिक संपन्नता से वह कोसों दूर है, स्वतंत्रता, समता और सामाजिक न्याय से वह कुछ अपरिचित है। उसके ढोरों प्रश्न है, जिसे हल करने के लिए वह लगातार जूझ रहा है। ‘हमारा कुनबा’ कविता की ये पंक्तियाँ हैं-

“हमारा कुनबा सूरज की ज्वाला है
लोकतंत्र की धारा है/ हमारी पाठशाला है
पर तुम्हारी अकल पर ताला है”^२

ईश कुमार गंगानिया सवर्णों से कहते हैं कि दलित वर्ग को भी इस समाज में जीने का हक है। हम तुम्हारी सेवा करते रहे फिर भी तुमने हमें अपमानित किया। तुम अब इतना समझ, हम भी इनसान हैं-

“तुमने दी सदा उपेक्षा, अपमान और
पुकारा हमें राक्षस, चण्डाल

१ डॉ. अच्युतन (सं.) मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि, पृ. १३७.

२ शेखर, मेरे कुनबे के लोग, पृ. ५६.

बस इतना समझ- हमने ही जिया है- यथार्थ में
इंसानियत, सहिष्णुता और सदाशयता को”^१

आज़ादी के बाद भी भारतीय समाज ने दलितों को मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया । जयप्रकाश लीलवान ‘दलित और आज़ादी’ नामक कविता में लिखते हैं-

“उनकी आज़ादी ने हमें
अच्छों की संतान से ज़्यादा/कुछ भी स्वीकार नहीं किया”^२

वर्तमान समय में लोग धन, अधिकार, सुविधाएँ आदि मिलने के लिए लड़ते हैं। लेकिन दलित वर्ग अपनी ज़िन्दगी के लिए लड़ते हैं। डॉ. पूरन सिंह ‘खेल’ नामक कविता में लिखते हैं-

“मेरे लिए/रोटी ही मेरी पूजा है/मेरा धर्म और ईमान है
इसी के लिए लड़ता हूँ रात-दिन
अपनी ज़िन्दगी से”^३

सामाजिक विषमता का शिकार दलित रहा है। चातुर्वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को नीचे दबाकर सवर्ण लोग ऊपर चढ़ गया और संपन्न भी बन गया। सुशीला टाकभौरे की ‘जीवन’ और ‘सीढी’ शीर्षक कविताएँ इसका प्रमाण हैं-

“वे ही कभी आपकी/सीढी बने थे।
जिस पर पैर रखकर/ आप ऊपर चढ़े थे”^४

१ ईशा कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा*, पृ. ४१.

२ विमल थोरात, *सूरज बडत्या*, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ५२.

३ वही, पृ. १०३.

४ डॉ. सुशीला टाकभौरे, *स्वाति बूँद और खारे मोती*, पृ. ११.

समाज की ऐसी स्थिति है कि दलितों को या उनके अनाज को कोई नहीं छूता। विशेष अवसरों पर भी उनके लिए ऐसी ही स्थिति है। इस सामाजिक स्थिति को कवि असंगघोष 'काश ! कि' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

“हमारे घरों ले/ नगद पैसा माँगता
कह देता/तुम्हारा अखिणा/कौन खाएगा”^१

इस प्रकार सामाजिक स्वर संबंधी अनेक दलित कविताएँ हैं जो भारत की असमानता को दूर करके सामाजिक समानता को कायम रखने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

३.१.२.१ शोषण

शोषण की प्रक्रिया भारतीय समाज में पहले थी। इस प्रक्रिया में भी जाति, वर्ण एवं अस्पृश्यता का प्रमुख स्थान है। इसमें दो वर्ग रहते हैं - एक वर्ग शोषण करता है, दूसरा वर्ग है शोषित। दलित कविता शोषकों के खिलाफ आवाज़ उठाती है। दलितों का शोषण पुराने समय से हो रहा है। उन्हें पशु से बदतर समझा जाता है तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। दलितों की दयनीय दशा को देखकर कवि सोनटक्के कहते हैं-

“तब दलितों के सचर सपनों के नीचे हुए फलक लेकर
चिल्लाया मैं मृत्युभर तुम्हारे हृदय के नुकीले काँटों पर”^२

आज़ादी के बाद भी भारत के गाँवों में दलितों की स्थिति बहुत बुरी है। 'माटी की गन्ध' नामक कविता में एन. आर. सागर अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

“मेरा जन्म हुआ भारत की पावन धरती पर

१ असंगघोष, *हम गवाही देंगे*, पृ. ८९.

२ धीरज भाई वणकर, *दलित विमर्श*, पृ. १०७.

लेकिन माटी की गन्ध मुझे अनजानी लगती है”^१

गाँवों में दलित एवं स्त्रियों का शोषण किस तरह हो रहा है इसकी सच्चाई कवि सुधाकर ‘स्वराज’ नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

“माता- बहिनों के लाल छीन, कुँओं में फेंके जाते हैं।
ललनाओं को नंगा करके, गलियों में दुष्ट घुमाते हैं।।
बामणशाही के ये गुलाम, जी भर कर हमें सताते हैं।/
मौका पाकर पापी हमको
जिन्दा ही बाँध जलाते हैं।।”^२

निर्मला पुतुल अपनी कविता में कहती हैं कि हो रहे अन्याय के खिलाफ बुलंद आवाज़ उठाओ। जिस तरह तूफान तहस-नहस कर देता है जैसे राख की चिंगारी जला देती है वैसे ही तुम भी बनो। सवर्ण लोग जो तुम्हारे साथ अन्याय कर रहे हैं, तुम्हारी चीज़ तुम्हें ही अधिक पैसे में बेचकर तुम्हें भूखा और थकान से तड़पने के लिए छोड़ दिया है-

“उठो कि अपने अंधेरे के खिलाफ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ
उठो कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफान से बवंडर उठता है
उठती है जैसे राख में दबी चिंगारी ”।^३

१ एन. आर. सागर, *आज़ाद है हम*, पृ.१५.

२ लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *उत्पीडन की यात्रा*, पृ. १८.

३ निर्मला पुतुल, *बिटिया मुर्मू के लिए*, कांदबिनी आगस्त, २००४.

रत्नकुमार सांभरिया लिखते हैं कि गाँव में रहना है तो आज भी हमें जूठन का खाना और जूते की मार सहना पड़ता है। वहाँ की सामाजिक स्थिति का चित्रण इस प्रकार है-

“गाँव में रहना है।/ तो अपने बाप-दादाओं
के पदचिह्नों/पर चल/जो पहनते थे।/ हमारी उतरन
और खाते थे/जूठन”।^१

दलित कवि श्री रणजीत सिंह सवर्णों के अत्याचार और क्रूरता को व्यक्त करते हुए ‘ललकार’ नामक कविता संग्रह में लिखते हैं -

“मासूम के साथ खून की होली तुमने खेली
एक से बढ़कर एक आपदा केवल हमने झेली”।^२

दलित कविता के क्षेत्र में डॉ. दयानंद बटोही ने अपनी अलग पहचान पायी है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता है ‘द्रोणाचार्य सुने उनकी परंपराएँ सुने’ इसमें शिक्षा के क्षेत्र में दलित छात्रों के साथ हो रहे अन्याय को कवि व्यक्त करते हैं-

“मैं सिर्फ/ द्रोणा तुम्हारे रास्तों पर चले गुरु से कहता हूँ
अब दान में अंगूठा मांगने का साहस कोई नहीं करता
प्रैक्टिकल में फेल करता है/
प्रथम अगर आता हूँ तो छठा या सातवां स्थान देता है।
जातिगंध टाइटिल में खोजता है
वह आत्मा और मन को बेमेल करता है।”^३

१ निर्मला पुतुल, *बिटिया मुर्मू के लिए*, कांदबिनी आगस्त, पृ. १३३.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. ११२.

३ डॉ. एन सिंह, *दर्द के दस्तावेज*, पृ. ११२.

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने 'आँसु ही आँसु' कविता में दलित जीवन की पीड़ा को दर्शाया है। स्वतंत्रता एवं समता दलितों के लिए सिर्फ सपना ही रह गया है-

“आँसु ही आँसु है/मेरे भारत/नम हुई है आँसु से
हर आदमी की आँख/ और संवतंत्रता, स्वराज्य व समता का
सपना संजोती भारत माता
संशय की पीड़ा भोग रही है”^१

हरिकिशन सन्तोषी सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहते हैं-

“आज भी जीवित है
हज़ारों द्रोणाचार्य हमारी इस सामाजिक व्यवस्था में!
जो दलितों को समझ एकलव्य/काट रहे हैं उनका अँगूठा
बिना मांगे गुरुदीक्षा में”^२

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर 'सिंधु- घाटी बोल उठी' कविता संग्रह में दलित समाज की दरिद्रता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-

“तुम पुराने कपड़े पहनकर
टूटे-फूटे झप्पतर में रहकर/सच्चे मन से जुटे हो
करने देश का निर्माण/पर फिर भी,
वे सभ्यज पुकारते है तुम्हें/ गंदे इन्सान”^३

१ डॉ. एन. सिंह, *चेतना के स्वर*, पृ. २३.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. १४५.

३ डॉ. पी. सुनाक्षर, *सिंधु घाटी बोल उठी*, पृ. ३१.

समाज व्यवस्था के विकृत चित्र को बदलने का आह्वान डॉ. कुसुम वियोगी इन शब्दों में करते हैं-

“उठ न सका तू सदियों से,/अब तक शोषण सहके
ज़िन्दगारी अंगारा बनकर, आज हृदय में दहके
x x x x x x
परिवर्तन तो परिवर्तन है,/आज नहीं कल होना है”^१

दलितों के प्रति हो रहे नरसंहार जैसे अमानुषिक कुकर्मों का जीता-जागता चित्रण कवि प्रस्तुत करते हैं-

“होली का लाल गुलाल, टेसुआ रंग
पिपरा की होली से पूछे/गरीब दलितों का ज़िन्दा नरसंहार
युगों की बदबू भरी तस्वीर है
दलित ज़िन्दा जलते रहे/बालक गोलियों से भून दिये
नारियों के गोरे-गोरे कोमल अंग
क्षण-विक्षण हो संसद की/सजी हुई तस्वीर बन गए
मेरे तिरंगे क्या इसीलिए/ हम तुझे फहराते हैं”^२

कवि शेखर ने दलितों की पीड़ा और संघर्ष को सिर्फ देखा ही नहीं, वास्तविक रूप से उसे भोगा भी है। देश को आज़ाद हुए कई वर्ष हो गए किंतु दलित-मज़दूर आज भी गुलाम है, हमारी वर्तमान शोषण व्यवस्था पर कठोर प्रहार करते हुए कवि कहते हैं-

“हाँ, अब भी गुलाम हैं/ ज़मीन्दारों के, सेठ-साहुकारों के
मिल-मालिकों के/और ट्रेड यूनियनों के

१ कुसुम वियोगी, पीड़ा जो चीख उठी, पृ. ३१.

२ डॉ. एन. सिंह, दर्द के दस्तावेज़, पृ. २१.

तथा लुभावने नारों के”^१

दलित जीवन के मानसिक संघर्ष को हरपाल सिंह अरुष व्यक्त करते हैं-

“ गू की छीतर ठाकूर देख/ मुझको गले लगाकर देख
तेरा जूठा में खाता/मेरा जूठा खाकर देख”^२

ये पंक्तियाँ उस कटु अनुभव का बयान करती हैं जो मैला ढोने तथा दूसरों की जूठन खाने की लाचारी के पीछे छिपा हुआ है। अस्पृश्यता और जूठन खाना वे सब तू भी करके देख, तो मेरी पीडा को समझ जाएगा। यह पीडा सामाजिक व्यवस्था के कारण है जो दलित सदियों से भोग रहा है।

डॉ. चन्द्रकुमार वरठे का कविता संग्रह ‘अधूरी चिट्ठी रेशनी की’ दलित चेतना की कविताओं से परिपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन के संघर्ष को, जो शताब्दियों से उसकी जाति के लोग अंधेरो के विरुद्ध करते आए हैं उसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

“सूरज का बेटा हूँ/ मिट्टी का जाया
सदियों से/ अंधेरे की तानाशाही के खिलाफ
लड़ता हूँ आया”^३

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन को उनसे भी बदतर ज़िन्दगी जीने वाले लोगों की चिन्ता है। ‘कविता मुंह खोलों’ में लिखते हैं-

“इन आँखों के/ सपने तो टूट गए लेकिन
जिन आँखों में/जनमें ही नहीं, उनकी सोचो तुमने तो

१ शेखर, उजालों के कछार पर, पृ. १३.

२ डॉ. कालीचरण स्नेही, दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, पृ. ६१.

३ डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, अधूरी चिट्ठी रेशनी की, पृ. १४.

कह ली/ अपनी और पराई भी? अब खोल/सको तो
बेजुबान का/मुंह खोलो”^१

सदियों से दलितों का शोषण होता रहा है। साहूकारों के मकड़जाल से दलित बच नहीं पाते। कुछ दलितों के पास न तो घर है, न खाने को रोटी। उनके बच्चे शिक्षा से वंचित रहते हैं। कवि शेखर कहते हैं-

“अब पता चला कि मेरी मेहनत छटपटा रही है
साहूकारों के मकड़जाल में/बेहद ठगा गया हूँ मैं
और हमें रोटी भी नसीब नहीं,/ अपने ही गाँव में।

आगे कहते हैं-

“अब पता चला/कि हमारे बच्चे भी शिक्षा से वंचित होंगे।”^२

भूख दलितों की एक सामाजिक समस्या है। रोटी और इलाज समय पर न मिलने से प्रतिदिन कितने बच्चे मर जाते हैं। कवि असंगघोष ‘मोना तुम मरी क्यों?’ कविता के ज़रिए हमारी सोच को हिलाया है।

“तुम्हारी लाश उखाड़े बिना/ बिना चीरफाड़ किये
तुम्हें भूख ने मारा/बुखार ने मारा/अभाल ने मारा, या
मौत ने मारा/ओ मोना! तुम मरी क्यों?”^३

दलित वर्ग का शोषण इतने छल से किया जाता है कि वे शिक्षा, उत्थान, और विकास की बात सोच ही न सके। अपनी रोटी के जुगाड़ में ही उलझे रहें। लालचन्द राही लिखते हैं-

१ डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *क्रॉच हूँ मैं*, पृ. ५३.

२ शेखर, *मायावती के गाँव में*, पृ. ७.

३ असंगघोष, *खामोश नहीं हूँ मैं*, पृ. २३.

“मेरी स्थिति धोबी के कुत्ते से कम नहीं थी
मेरा नाम न स्कूल में दर्ज था न कारखाने में
मेरे भाग्य में मूँगफली बेचना था कपबशी धोना ही था”^१

सूरजपाल चौहान ने ‘न्यौत’ कविता में गाँव का यथार्थ सामाजिक चित्रण किया है। गाँव को बाहर से देखने में सुख-शांति नज़र आती हैं। लेकिन असलियत उसकी आत्मा में हैं। वे लिखते हैं-

“बदबू से /जी मितलाने लगेगा
देखकर बजबजाती गन्दगी/गू से लिथड़े
सुअरों की ढों-ढो”^२

सूरजपाल चौहान की ‘मेरा क्या हैं’ शीर्षक कविता भारत में दलितों के साथ हो रहे बेईमान व्यवहार की सच्चाई का बयान करती है-

“संबिधान भी रचा मैंने/फिर भी वंचित, अपेक्षित
नगर, गाँव से बाहर कर/मेरा डेरा
मेरी ही संचित शक्ति से/तुम बैठ गये सत्ता पर/फिर मेरा क्या”^३

शोषण के फलस्वरूप समाज में दलित भूख, दरिद्रता, अशिक्षा, अत्याचार आदि से पीड़ित हैं। इस तरह शोषण के विविध आयामी स्वरों को वाणी देने का सफल प्रयास दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

१ लालचन्द राही, *अनाम बस्तियों के देश में*, पृ. १७.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर*, पृ. २५.

३ सूरजपाल चौहान, *प्रयास*, पृ. ६३.

३.१.२.२ श्रम

बहुत सारे दलित गीतों का जन्म; मेहनत या श्रम के साथ जुड़ा हुआ है। मेहनत करते वक्त मज़दूर के नैसर्गिक श्वासोच्चास में ताल के साथ जो शब्द है, वह महत्वपूर्ण होता है। सब जीवी श्रम करता है। लेकिन मानव की मेहनत का महत्व है। एक ओर वे धरती को उर्वरा बनाता है। दूसरी ओर प्रकृति में रहकर, प्रकृति के साथ मिलकर अपने जीवन बिताने की एक 'फोरमुला' बनाता है इसलिए श्रम या मेहनत दलित जीवन की कुंजी है। धरती से उत्पन्न अन्न, धन, प्रकृति के पंचभूत-वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश आदि का हिस्सा और अधिकार श्रम करने वालों का भी है। धरती में श्रम करने वाले ज़्यादा दलित एवं निम्न जाति के हैं। डा.एन सिंह ने सही कहा है-

“सतह से उठते हुए/मैंने जाना कि/इस धरती पर किये जा रहे
श्रम में/जितना हिस्सा मेरा है/उतना हिस्सा/ इस धरती के
हवा पानी और/इससे उत्पन्न होने वाले
उस अन्न और धन में भी है”।^१

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सामाजिक-आर्थिक यथार्थ को उकेरकर श्रम की भागीदारी फसल में किस अनुपात में होना चाहिए इसके लिए विचार करने की प्रेरणा दी है। आर्थिक विकास में दलित समाज का योगदान होते हुए भी इस समाज को गरीबी भोगनी पड़ती है। 'ठाकूर का कुंआ' नामक कविता में वे लिखते हैं-

“खेत ठाकूर का/बैल ठाकूर के
हल ठाकूर का/हल की मूठ पर हाथ मेरा
कुंआ ठाकूर का/पानी ठाकूर का
खेत खलिहान ठाकूर के/गली - मुहल्ले ठाकूर के

१ डा. एन. सिंह, सतह से उठते हुए, पृ. २४

फिर अपना क्या?/ गाँव?/शहर? देश?’^१

भारतीय सामाजिक-आर्थिक संस्था में दलित व्यक्ति आज भी विभिन्न रूपों में सबसे ज्यादा शोषित, प्रताड़ित और अपमानित है। आधुनिकता के छलावेपूर्ण आइने में वह अभी भी सबसे ज्यादा उपेक्षित और प्रताड़ित महसूस करता है-

“सूरज की गर्मी से/ नहीं झुलसता मेरा शरीर
उसे झुलसाता है/ यंत्रणाओं का सूरज”।^२

सवर्ण दलितों से इतना काम कराते हैं कि जितना पशु से भी नहीं लिया जाता। इतना काम लेकर भी उन्हें उनके श्रम का सही मूल्य नहीं मिलता। मलखान सिंह अपनी ‘आखिरी जंग’ कविता में इसका वर्णन करते हैं-

“ओ परमेश्वर!/कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने /देख, हमारे चेहरों को देख /
भूख की मार के निशान/साफ दिखाई देंगे तुझे।

x x x x x x
हमारे सूजे हुए कन्धों को छू/बैल के पके कंधे का दर्द भी
हलका लगेगा तुझे”।^३

इस संसार में जितने भी भौतिक वस्तुएँ हैं, उन्हें दलितों ने ही अपना खून पसीना एक कर बनाया है। चाहे वह देवों की मूर्तियाँ हो, किले हो, मिट्टी के बर्तन हो आदि सब शूद्रों के पसीने से ही बना है। अशोक भारती ‘कौन थे वे’ शीर्षक कविता में पूछते हैं -

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप*, पृ. १३.

२ वही

३ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. ४१.

“किसका पसीना था वह/ ढाके का मलनल
चंदेरी की साडियाँ/ गाढे का खद्वर
कौन थे वे जो-/पत्थरों में दम भरते थे,
सूत से कमाल करते थे, तुम्हारा इतिहास गढ़ते थे?”^१

इसी कविता में कवि आगे सवाल करते हैं और जवाब भी देते हैं-

“क्या वह तुम्हारे वंशज थे।/जाति-विरादर थे,
ब्राह्मण थे, पुरोहित थे, राजा थे?/वह शूद्र थे, अछूत थे”^२

श्रमिक व्यक्ति श्रम करके उसका शरीर हड्डियों के ढाँचे में बदल गया है। इतनी मेहनत करने पर भी उसे ठीक तरह दो वक्त की रोटी नहीं मिलती। दलितों को श्रम और संताप किस तरह तोड़ती है इसका चित्रण जयप्रकाश कर्दम अपनी ‘अम्बेडकर की संतान’ शीर्षक कविता में करते हैं-

“हड्डियों का ढाँचा सा दिखने वाला/ हरियां जानता है
वह रुग्ण नहीं है उसे/श्रम और संताप ने तोडा है”^३

आज दलित वर्ग मानसिक रूप से अपने अधिकारों के लिए समाज में अपने स्थान के लिए और आत्मसम्मान के लिए सचेत हो गया है। डॉ. रमणिका गुप्ता लिखती हैं-

“..... पर वे अब बोलने लगे हैं
भूख को भोजन/ प्यास को पानी

१ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. १९०

२ वहीं

३ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं*, पृ. ५५.

मार को लाठी कहने लगे हैं
वे बोलने लगे हैं अब!.....'^१

दलितों के जीवन का भी मूल्य और महत्व हैं। अगर देश में दलित मज़दूर नहीं है तो पूरा भारत भूखा मर जाएगा। वे हर दिन -रात इतना श्रम तुम्हारे लिए करते हैं। फिर भी तुम उसे धूल के समान उडाते हैं। रजनी तिलक 'मजदूर है इस देश का दलित' नामक कविता में व्यक्त करती हैं कि-

“गर्मियों में लहू टपकता, बन पसीना तुम्हारा,
सर्दियों में अर्द्ध-वस्त्र, ठंड से बेहाल बेचारा/ दलित?
तुम ही हो इस देश के सर्वहारा”^२

सामाजिक अन्याय का एक कारण दलित समाज के लोगों का अपने अस्तित्व के प्रति चेतन न होना भी हैं। डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने ऐसे लोगों को जिन्दा कौम के मुर्दा लोग बताया है। आपने ऐसे लोगों का आह्वान किया है कि वे अपनी दीनता-हीनता की भाव-भूमि से ऊपर उठकर स्वाभिमानी बनें और हथियारबद्ध होकर अन्यायकारियों का मुकाबला करें। 'स्वाभिमान के पथ पर' शीर्षक उनकी कविता की पक्तियाँ हैं-

“आज ही अपनी/दीनता और हीनता को झटक दो
और साहस के साथ/ स्वाभिमान के पथ पर
कदम बढ़ा दो”^३

जब तक दलितों को दलितत्व से नफरत नहीं होती तब तक विद्रोह की ज्वाला नहीं फैलेगी। भीख माँगना, जूठन लेना, हाथ फैलाना, अन्याय सहना आदि दलितत्व

१ डॉ. रमणिका गुप्ता, *अब मूरख नहीं बनेंगे*, पृ. ४७.

२ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. ३८.

३ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ. ३५.

मानसिकता की हीनता का प्रमाण है। दलितों को सामाजिक जीवन का मूल्य समझना चाहिए और बाबा साहब अंबेडकर के मार्ग पर चलना होगा, वहाँ उसकी रोशनी है। कवि दामोदर मोरे लिखते हैं-

“जो अंधेरे से कहते हैं नफरत/उन्हें हरिजन शब्द लगता है गाली।

जो चाहते हैं रोशनी की हिफाजत,

उन्हें जयभीम शब्द लगता है, महकते फूल जैसा”।^१

उपर्युक्त कविताओं के विश्लेषण से यह पता चलता है कि दलित कविता के सामाजिक स्वर में श्रम के महत्व को पहचानने से ही दलितों में आत्मविश्वास और चेतना जागृत कर सकता है। प्रगतिवादी सोच के मूल में भी श्रम एवं वर्ग - संघर्ष की ओर संकेत है। मार्क्स का कहना है कि आज तक का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है और ये वर्ग उत्पादन संबंधों के कारण निर्मित है। श्रम के बिना उत्पादन संभव नहीं है। इस तरह के शारीरिक एवं मानसिक श्रम भी एक तरह की शिक्षा है। अतः अनायास संगठित हो सकते हैं। संगठित होने से सामाजिक संरचना को बदलने के लिए संघर्ष भी कर सकते हैं।

३.१.३ दलित कविता का आर्थिक स्वर

हम जानते हैं कि वर्णव्यवस्था को भंग करते हुए जाति-भेद का उन्मूलन दलितों की मुक्ति के लिए अनिवार्य है। संघर्ष द्वारा श्रमिक वर्ग के आर्थिक शोषण से मुक्ति की ओर कार्ल मार्क्स ने भी संकेत किया है। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि दलितों को सर्वप्रथम सामाजिक दासता से मुक्ति पाना ज़रूरी है। क्योंकि आर्थिक शोषण को खतम करने के लिए यह अत्यन्त ज़रूरी है।

१ प्रो. दामोदर मोरे, *सदियों से बहते ज़ख्म*, पृ. ७८

मानव जीवन में अर्थ का बड़ा स्थान है। लेकिन दलित हमेशा अन्त्यज रहे, दास रहे। इसलिए आर्थिक उन्नति उनके जीवन में नहीं के बराबर है। धन या संपत्ति हमेशा उच्चवर्ग या वर्चस्व के साथ रहा है। ब्राह्मणवादी सोच ने सोच विचार करके संपत्ति को अपने कब्जे में रखा। स्वाभाविक है कि आर्थिक बल के लिए बाकी लोगों को उनके साथ संघर्ष करना पड़ा। दलित कविता के आर्थिक स्वर में इस संघर्ष का जीता - जागता चित्रण मिलता है। इसका एक प्रमाण नवेन्दु महर्षि के 'मनुस्मृति का अन्तरंग' नामक कविता में है-

“कोई दलित अगर धन या संपत्ति/ का संगृह करता है

तो सवर्णों को वह धन या संपत्ति/छीन लेनी चाहिए

यह मनुस्मृति का/धर्म वाक्य है

x x x x x
जिसे सुनकर एकबारगी/न्याय की तो बात क्या

अन्याय भी अपना माथा झुका ले”^१

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित समाज का चित्रण किया है जिसमें दलित व्यक्ति तंग गलियों में निवास करते हैं। दुःख भरे रोने चिल्लाने की आवाज़ को कवि ने कविता के रूप में दर्शाया है। यह उसकी अभावग्रस्त स्थिति और आर्थिक दरिद्रता का भी परिचायक है-

“संकीर्ण पतली गलियों में/कुनमुनाती गन्दगी से

टखनों तक तने गाँव में/सुना है

दहाड़ती आवाज़ों को/ किसी चीख की मानिंद

जो हमारे हृदय से/मस्तिष्क तक का सफर तय करने में

१ नवेन्दु महर्षि, संसद तो सवर्ण है, पृ. १०५.

थककर सो गई है।’^१

कवि कंवल भारती आर्थिक स्थिति का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

“चिडिया भूखी थी/इसलिए गुनाहगार थी/मारी गई वह चिडिया
जो भूखी थी/लेकिन गोरव पाण्डे ने गलत लिखा है
वह चिडिया भूख से नहीं/चिडिया होने से पीडित थी
चिडिया जो मारी गई थी”।^२

नरक-स्वर्ग की कल्पना दलित कविता में नहीं है। किन्तु नरक से आशय यहाँ गरीबी, अस्पृश्यता और उपेक्षा से युक्त समाजिक व्यवस्था से है। कवि मंसाराम विद्रोही इस दलित जीवन की आर्थिक दशा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

“लू वर्षा गुण्ड न छोड़ कहीं/वे शोषित पीडित मरते जो।
भुखमरी जहाँ की शोभा है/वे भारत में ही रहते जो”^३

कर्मशील भारती समाज की आर्थिक व्यवस्था का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

“निर्धनता की, चक्की में पिस रहा समाज है।
महंगाई की रगड़न में पिस रहा समाज है,
मुट्ठी भर धनवानों में उलझी आर्थिक व्यवस्था
सदियों पहले सा शोषण विद्यमान आज है”।^४

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *सदियों का संताप*, पृ. २६.

२ पुत्री सिंह (सं), *भारतीय दलित साहित्य परिप्रेष्य*, पृ. ३३४.

३ मंसाराम विद्रोही, *पीडा जो चीख उठी*, पृ. २०.

४ कर्मशील भारती, *दलित मंजरी*, पृ. ९३.

स्पष्ट है सामाजिक अर्थ व्यवस्था पहले से आज तक कुछ लोगों के हाथ में ही हैं। आर्थिक स्तर में भी दलितों को न्याय नहीं मिल रहा है। जिसमें अर्थाभाव, सर्दी, गर्मी, बरसात तीनों ऋतुओं में लोग लगभग समान रूप से दुखी रहते हैं। जहाँ बच्चे प्रायः भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, ऐसे भाव को कवि रामदास निमेश ने निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है-

“नंगे रहते रात, दिन, सर्दी, गर्मी, बरसात
बिना अन्न अरु दूध के, शिशु भूखे मरजात”^१

पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' ने अपनी 'निर्वाचन' शीर्षक कविता के ज़रिए समाज की आर्थिक दशा का यथार्थपरक चित्रण किया है-

“झोपडियाँ आज भी/मेरी आँखें नम कर जाती हैं।
चिथड़ा शक्लें/मुझे गम दे जाती हैं।
रेंगते कीड़े तलाश रहे हैं।/कोई चमत्कार
कंकाल करता है/ नये निर्वाचन को नमस्कार”^२

यहाँ निर्वाचन और कंकाल शब्द स्वतंत्रता के बाद भी राजनैतिक दायित्वहीनता का प्रतीक है। प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विषमता दलित समाज की एक भीषण समस्या है। अर्थ के बिना जीवन को आगे ले जाना मुश्किल है। दलित कविता आर्थिक समानता के पक्षधर है। साथ में दलितों को न्याय दिलाना चाहती है।

१ रामदास निमेश, भीमकथामृतम्. पृ. १३६.

२ डॉ. श्यामसिंह शशि, एकलव्य और अन्य कविताएँ, पृ. ३१.

३.१.४ दलित कविता का राजनीतिक स्वर

हिन्दी की दलित कविता अपने दर्द भरे अतीत को आज के समय संदर्भों में रखकर विश्लेषित कर रही है, जो भविष्य की राह दिखाने का प्रयास ही है, अब दलित जनता और कवि यह जानने लगे हैं कि हमारी स्थिति को केवल राजनीतिक शक्ति ही बदल सकती है। डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने कहा भी था कि- “हम अनुभव करते हैं कि कोई दूसरा हमारे दुःख-दर्द दूर नहीं कर सकता और जब तक हमारे हाथों में राजनीतिक शक्ति नहीं आ जाती, हमारे दुःख-दर्द भी दूर नहीं हो सकते”^१ लेकिन दलित वर्ग अब तक अपनी शक्ति को पहचान नहीं पाया है, उसे श्री जगजीवन राम इस तरह व्यक्त करते हैं - “ये निरीह अनुसूचित जाति और जन-जाति के लोग स्वयं अपनी शक्ति से परिचित नहीं हैं, और यह शक्ति है, इनकी अपार जनसंख्या”^२ इस अपार जनसंख्या को संगठित करके अपने हक के लिए संघर्ष की प्रेरणा देना ही दलित कविता का उद्देश्य है।

स्वतंत्रता आंदोलन के बहुत पहले ही स्वामी अछूतांनंद हरिहर जी ने अपना राजनीतिक विचार प्रबल रूप से पेश किया है। अमीनाबाद पार्क लखनऊ में १९ अक्तूबर १९२६ को सम्मेलन में तत्कालीन होम मेम्बर छतारी की सेवा में यह कविता स्वामी जी ने प्रस्तुत की-

“ऐ होम मेम्बर ! नवाब साहब, हम आपको क्या अर्ज सुनाये।

हों आदि हिन्दु सभा के रहबर ! हकूक मुल्की हमें दिलाये ॥

हम आदिवासी हैं। इस जमी के, कहीं न बाहर से आये है।

हमारे एक हैं सभी से ज्यादा, हकूम मुल्की हमें दिलाये ॥

१ डॉ. एन. सिंह, मेरा दलित चिंतन, पृ. ५२.

२ वहीं, पृ.

हमारे पुरखों के थे हजारों किले यहाँ, वेदों से है जाहिर।
गुलाम हमको किया द्विजों ने, हकूक मुल्की हमें दिलायें।
द्विजों ने हमको 'अछूत' कहकर, दिये सभी नीच काम हमको।
हराम आराम सब हुआ है, हकूक मुल्की हम दिलाये।।”^१

स्वामीजी ने बहुत पहले ही दलितों की पहचान एवं अस्तित्व पर सवाल उठाया है। वे उस समय के अधिकारियों से दलित/मूलवासियों की राजनीतिक हक माँगते हैं। प्रस्तुत पंक्तियाँ अतीत वर्तमान और भविष्य में भी प्रासंगिक है।

आज भी दलितों पर होने वाले अत्याचारों की कमी नहीं है। यहां पर कानून अंधा हो जाता है, पुलिस तन्त्र बेकार हो जाता है। नेता अपने पद को दूसरे राजनीतिक दल के बदनाम करने के लिए एक राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इन सभी के लिए दलित व्यक्ति नहीं, वोट होकर रह गया है, इस स्थिति को डॉ. एन. सिंह अपनी एक कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

“जुल्म बढ़ते जा रहे हैं भाव से।/राजनीति हाट है परचून की।।
वोट की कीमत यहाँ सब आंकते।
किन्तु कीमत कुछ नहीं है खून की”।^२

डॉ. शत्रुघ्न कुमार आज के संविधान पर समीक्षा करते हैं। आज के संविधान मानव के लिए नहीं कुछ स्वार्थ लोगों की ऊँचाई के लिए बनाया गया है। वे 'संविधान समीक्षा' नामक कविता में लिखते हैं-

१ डॉ. राजपाल सिंह 'राज', स्वामी अछूतानन्द हरिहर, पृ. ४२.

२ डॉ. एन. सिंह, मेरा दलित चिंतन, पृ.५१.

“हो गई शुरुआत संविधान समीक्षा की

अंधे युग के शुरुआत के साथ

कुचली जायेंगी दीवार मानवता की/संविधान समीक्षा के साथ”^१

‘चिंगारी’ नामक कविता में वर्तमान लोकतंत्र की असलियत का पर्दाफाश किया गया है-

“मेरी कविता पूछती है/कि उनके मन में अब भी क्यों मक्कारी है।

‘अवसर की समानता’ भी इस लोकतंत्र में गाली है

और ‘थूथ फॉर इक्कीलिटी की पौधा/घृणा से लेस होकर उगाई हैं।”^२

कवि सुधाकार आज़ादी के बाद हुई सत्तालोलुप प्रवृत्ति को यूँ व्यक्त करते हैं-

“फँसी के तख्ते चढ कर/जिस आज़ादी के पढे छंद

विस्मिल वह आजादी/कोठी-बंगलों में हुई बन्द

भगत सिंह-शेखर-सुभाष के/असमानों को धूल मिला

आज़ाद हुआ बस लालकिला”^३

मोहनदास नैमिशराय इन्हीं प्रतिशोधात्मक शत्रुतापूर्ण प्रवृत्तियों की तरफ इंगित कर लिखते हैं-

“वे आ गये/हाथों में वछीं/खिलावर

नंगी तलवारें/ कटे लिये

राजनीति के अलम्बरदारों से भरी जीप गाडी/होंडा

मारुती/फिएट/एम्बेसडर/उनका शोर सुनकर

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १२३.

२ शेखर, *उजालों के कछार पर*, पृ. ११४.

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ११४.

घरों में माताओं के स्तन मूँह में डाले/बच्चे चोंक उठते हैं।”^१

डॉ. धर्मवीर संविधान का हवाला देकर बूचडखाने में बदल गये राष्ट्र को चित्रित करते हैं-

“वह संविधान है- किस काल से गुज़र रहा ?

पत्रों से बढ़ता है आए दिन ढंगे होते हैं

बेतार से बूचड़ खाने की सूचनाएँ सुनता है

कितने अछूत कटे, भून दिये गये और क्यों”।^२

हरनोटिया की ‘पूर्वजों से पूछो’ कविता में आरक्षण की आवश्यकता बताई गई है। सवर्णों ने अपने छल-प्रपंच से दलितों को शिक्षा से वंचित रखा। वे जानते थे अगर ये लोग पढ़ेंगे तो फिर हमारी खेती व गुलामी कौन करेगा। सदियों से शिक्षा व नौकरी से वंचित दलितों के लिए संविधान में आरक्षण की व्याख्या की गई है। किन्तु आज कुछ नेता लोग उन्हें दूर करना चाहते हैं। कवि, ‘सत्ता में आरक्षण क्यों?’ का उत्तर इन शब्दों में देते हैं-

“हुआ समझौता/सत्ता में भागीदारी का/आरक्षण क्यों”?^३

संविधान में पिछड़े शूद्रों के विकास के लिए आरक्षण दिया गया है। इस आरक्षण के कारण सवर्ण शूद्रों से घृणा करने लगे हैं। अगर सोचा जाए तो सवर्णों को भी आरक्षण है- जैसे मंदिरों की कमाई पर ब्राह्मणों का एकाधिकार है, गैर सरकारी संस्थाओं में सवर्णों का नियोजन, यह सब उचित है तो दलितों के लिए क्यों अनुचित? सवर्ण

१ वही, पृ. ४५-४६.

२ डॉ. धर्मवीर, *हिरामण*, पृ. ६४.

३ जसराम हरनोटिया, *पूर्वजों से पूछो*, पृ. ११.

दलितों के आरक्षण का विरोध क्यों करते हैं? इसका चित्रण जयप्रकाश कर्दम अपनी 'आरक्षण' कविता में करते हैं-

“सब कुछ/तुम्हारे लिए हो तो उचित है
लेकिन मेरा भी हिस्सा हो/तो अनुचित है।
यानि हर जगह/तुम्हारा आरक्षण उचित है/मेरा अनुचित”^१

धर्म, जाति के झगड़े की समरसता, एकता के लिए घातक है। लेकिन समाज में होने वाले बुराईयों को राजनैतिक संरक्षण मिलता है। अपराधी इसके बल पर बच जाता है। ऐसी अमानवीय प्रवृत्तियों को राजनैतिक छाया मिलती रही तो कवि डॉ. कुसुम वियोगी लिखते हैं-

“नेता सारे लुभा रहे हैं, सत्य अहिंसा की बोली से।
जाति-धर्म-भाषा के बल पर खेल खून की होली से।
अधिकारों की लड़ें लडाई, दफन करें वे गोली से!
दहेज - दरिन्दें जला रहे जो दुलहन उतरे डोली से।
हुआ न्याय का आसन हग-मग हुई धर्म से हीन धरा
देख व्यवस्था राज-काज की आम आदमी डरा-डरा”^२

दलित कविता केवल हक की माँग ही नहीं करती, वरन सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त हो जाने के बाद अपने कर्तव्यों के निर्वहन की बात भी करती है। आज की वास्तविकता पर उँगली रखते हुए कवि कहते हैं कि आरक्षण का लाभ लेकर तुमको नौकरी मिल गई, तो तुम अपनी नौकरी से ही चिपक गए और तुम्हारा अतीत क्या है?

१ जयप्रकाश कर्दम, *गूगा नहीं था मैं*, पृ. १७.

२ डॉ. कुसुम वियोगी, *पीडा जो चीख उठी*, पृ. ३०.

तुम इसे जानना ही नहीं चाहते हो... सच तो यह है कि तुम सुविधाभोगी हो गये हो यही तुम्हारे पतन का कारण है-

“तुम नहीं जानना चाहते/अपने अँधेरे का इतिहास.....

तुम सुविधाभोगी हो गए हो...../जो तुम्हारे/अधोपतन की पहचान है”^१

आज के नेता लोग जो कुछ कहते हैं वो करते नहीं। सिर्फ लोगों की आँखों में धूल डालने के लिए बोलते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहते नेता पर कवि सुदेश तनवर ‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद’ नामक कविता में लिखते हैं-

“स्वतंत्रता के छद्म/आदोलन में।

बन बैठोगे/एक बार फिर/महान देशभक्त/राष्ट्र के शुभचिंतक”^२

हमारा देश लोकतांत्रिक है, दलित अपने बीच में से नेता को चुनना चाहता है। दलित वर्ग का मानना है कि हमारे स्वप्नों को वही व्यक्ति साकार कर सकता है, जो हमारे बीच से ही चुनकर संसद में गया है। बहुत से दलित नेताओं को दलित वर्ग में चुनकर संसद और विधानसभाओं में भेज दिया लेकिन उनमें से अधिकांश केवल अपने व्यक्तिगत स्वप्नों को ही साकार करने में लग गए हैं। फिर भी कवि विश्वास व्यक्त करते हैं कि दलितों की समस्याओं को कोई दलित ही सुलझा सकता है। सी.बी. भारती लिखते हैं-

“खड़े किए हैं हमने भी अपने सपनों के महल

अपने नुमाइंदों के कन्धों पर/जो उपजे हैं हमारे बीच से ही

चुनेंगे उन्ही ही हम अब अपना रहनुमा”^३

१ डॉ. कुसुम वियोगी, टुकड़े टुकड़े दंश, पृ. ९६.

२ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ६६.

३ डॉ. सी. बी. भारती, आक्रोश, पृ. ५४.

जिस संसद में दलित वर्ग चुनकर लोकतांत्रिक प्रणाली से अपने नेताओं को भेजते हैं, वे संसद के अंदर पहुँचकर केवल अपने व्यक्तिगत कार्य ही करते हैं और संसद के बाहर जो, दलित वर्ग जब निराश हो जाता है। कवि वरठे लिखते हैं-

“कभी-कभी सोचता हूँ/क्यों नहीं मेरे हाथ बन्दूक बन जाए?
क्यों नहीं मेरी आँखे मशालें बनीं?
..... और, क्यों नहीं मैं नहीं मैं ज्वालामुखी बनकर /फट पड़ा”^१

आज धर्म के नाम पर मनुष्य की मनुष्यता कुचल रहा है, अपने पैरों तले रौंद रहा है। ‘मनुष्यता’ नामक कविता में सांप्रदायिकता की समस्या का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है-

“फाँसीवादी ताकतें/धर्म के नाम पर
मनुष्यता को कुचल रही हैं/यह सब उस देश में हो रहा है
जो मनुष्यता को/सबसे बड़ा धर्म कहता है”^२

दलित वर्ग को नेता लोग हर चुनाव में झूठा आश्वासन देते हैं, कि रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का समाधान कर दिया जाएगा। अपने चारों ओर स्वतंत्रता का राग सुनकर दलित वर्ग को लगता है ये कैसी स्वतंत्रता है? न खाने को खाना है न पहनने को कपड़ा न रहने को घर है? कुछ भी तो नहीं है। फिर भी उसको केवल आश्वास ही दिलाता है और कुछ नहीं। डॉ. एन सिंह लिखते हैं-

“यह स्वतन्त्रता आधा गद्दा है, आधा लिहाफ
तब उसके मन में उभरता है- एक प्रश्न !

१ डॉ. चन्दुकुमार वरठे, *अनाम वस्तियों के देश में*, पृ. ५.

२ जयप्रकाश कर्दम, *तिनका तिनका आग*, पृ.१७

क्या यही स्वतंत्रता है?/इसे मैं ओढ़ूँ या बिछाऊँ”^१

सभ्य और ऊँचे लोग दलित वर्ग को वोट-बैंक मानते हैं और जब चुनाव आता है तब दलितों का इस्तेमाल करते हैं। मनोज सोनकर ‘घुरछू का घोषणा-पत्र’ कविता में लिखते हैं-

चुनाव के समय/हम ‘बेअरट चेक’ हो जाते हैं
और उसके बाद कूड़ेदान”^२

स्वतंत्र भारत में आज भी दलित परतंत्र से बदतर जीवन जीने को विवश है। न केवल दलितों को मताधिकार के प्रयोग से वंचित कर दिया जाता है बल्कि दलित जन प्रतिनिधियों को सार्वजनिक जीवन में भी अपमानित होना पड़ रहा है। दलित जीवन के इस सत्य का उद्घाटन डॉ. शत्रुघ्न कुमार ने ‘स्वराज’ शीर्षक कविता में विस्तार से किया है-

“परतन्त्र कोटि-कोटि दलित जन आज भी
वंचित कोटि-कोटि दलित जन/अपने हक से आज भी
बरसायी जाती लाठियाँ उन पर आज भी”^३

संविधान में राजनीतिक दल अपने फायदे के लिए परिवर्तन करना चाहते हैं। प्रो. दामोदर मोरे ने इसका विरोध करते हुए कहा है-

“मुझे बर्दाश्त नहीं होता भारतीय संविधान को
मनुवादियों के हाथ में देना।
मुझे बर्दाश्त नहीं होता शौतान के हाथों में

१ डॉ. एन. सिंह, *आज़ादी के नाम एक दिन, दर्द के दस्तावेज*, पृ. १२५.

२ मनोज सोनकर, *शोषितनामा*, पृ. २१.

३ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. ६४.

भारतीय संविधान होना”^१

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित हमेशा अधिकार से वंचित रहने के लिए प्रारंभ से लेकर वर्चस्ववादी राजनीति काम कर रही है। वेद काल से लेकर आज तक का घटना क्रम इसकी साक्षी है। आज का दलित; राजनीतिक अधिकार या सत्ता के प्रति जागरूक है। वह अपना हक राजनीतिक स्तर पर माँगना चाहते हैं। इसलिए दलित कविताओं के राजनीतिक स्वर में सत्ता मनुवादियों के हाथ में न देने के लिए आह्वान है। भारतीय संविधान बाबा साहब ने बनाया लेकिन वह शैतानों के हाथ में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि दलित कवि मनुष्यता को ही सबसे ऊपर मानते हैं।

३.१.५ दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर

भारत में अनेक सांस्कृतिक परंपराएँ रही हैं। ये परंपराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है। अर्थात् परंपरा समूह विशिष्ट होती है। ये परंपराएँ कोई दैविक निर्माण नहीं; अपनी आवश्यकताओं के अनुसार तत्वों का चुनाव कर समाज उन्हें आकार देता है। यह मानव निर्मित सांस्कृतिक परंपराएँ निरंतर नई आवश्यकताओं द्वारा अनुकूलित होती रहती है। भारतीय संस्कृति में पर्याप्त विविधता है; परंपराएँ हैं; लेकिन विविधता में एकता का स्वर भी है “इस देश में कुल ९१ सांस्कृतिक क्षेत्र (Cultural areas) है। यहाँ कोई ४६३५ समुदाय है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त १८ भाषाएँ और कोई १५०० बोलियाँ हैं। इस देश में ८०% लोग मांसाहारी है।”^२ भारत की एक विशेषता यह है कि यहाँ कई लोग आये और कुछ समय तक अपनी स्वतंत्र छवियाँ रखी और फिर यहाँ के मूलवासी समाज में मिल गये या मूलवासी को भगा दिए। “आर्य, यूनान, शक्, कुषाण, आथीर, गुर्जर, हूण आदि सब भारतीय विराट परम्परा का अंश बन गया। एक ओर पुरानी छवियों का संविलयन होता रहा तो दूसरी ओर नयी स्वतंत्र छवियाँ

१ दामोदर मोरे, *सदियों के बहते जख्म*, पृ. ६७.

उभरती रही। जैन धर्म ने एक नयी वैचारिक भूमि प्रदान की जिस ने कई बहुमूल्य अवधारणाओं को चुनौती दी। बौद्ध मत ने एक क्रांतिकारी विचारधारा को प्रतिष्ठित किया। इस्लाम, ईसाई धर्म तथा सिख का प्रसार हुआ। लंबे समय तक इन की छविyaँ स्वतंत्र रही, आज भी है। लेकिन वे भारतीयता से पृथक नहीं, क्योंकि उनकी जड़ें भारतीय चिंतन की भावभूमि है”।^३ परंपरा और संस्कृति जीवन के समग्र क्रिया-कलापों की सतत सुधरते, विकसित होते रहने की प्रक्रिया हैं। ये हवा की तरह आगे बढ़ती हैं, और व्यक्ति के हाव-भाव व्यवहार में गुणात्मक रूप में ही दिखाई पड़ती हैं।

३.१.५.१ उत्तरआधुनिक संदर्भ और संस्कृति

संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति मानने का विचार पुराना है और ये अभिजात या प्रभुत्ववादी वर्गों की संस्कृति संबंधी विचार के निकट है। माथ्यू अरनार्ड, टी. एस. इलियट आदि इसके प्रवर्तक रहे हैं। रेमण्ड विल्यमस ने Culture नामक अपने ग्रन्थ में “मानव के परिष्कार की विशिष्ट अवस्था को संस्कृति का बुनियादी अर्थ बताया है और परिष्कार की प्रक्रियाओं को भी संस्कृति के अंतर्गत गिनते हैं। इन प्रक्रियाओं का जिन वस्तुओं से मदद मिलती है उन्हें सांस्कृतिक साधन मानते हैं। जिन्में प्रमुख है- मानव की बौद्धिक क्रियाएँ और विभिन्न कलाएँ।”^१ इ. पी. तोम्सन का विचार यह है कि “वर्ग समाज में संस्कृति जीवन की समग्र पद्धति के बदले संघर्ष की समग्र पद्धति है।”^२ एक ओर लुसियस गोलडमान ने विभिन्न कलाओं को “सांस्कृतिक सर्जनाएँ कहता है”^३

१ Raymond Williams, 'Culture' (The fullest, most recent and integrative development of Williams Theory of Culture is expounded in his work Culture (1981).

२ E.P. Thomson, Cultural Studies

३ Lucies Goldman, *Towards a Sociology of the Novel*, I would like make a few general hypotheses. The analysis that I have just developed extends to one of the most important novel forms a statement that now seems to me to be valued for almost forms of authentic cultural creation. p. 14.

(Cultural creation) तो दूसरी ओर ग्राम्शी वर्चस्व की अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। समाज में संस्कृति वैसा ही आधारभूत व्यवहार है; जैसा आर्थिक या राजनीतिक व्यवहार। अन्टोणियो ग्राम्शी ने कहा कि “ साहित्य के इतिहास का संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन होना चाहिए और भाषा को संस्कृति का मुख्य रूप मानना चाहिए।”^१ ग्राम्शी का ओर एक मत है कि “भाषा में समाज का अतीत मौजूद रहता है और उसका वर्तमान भी। भाषाएँ सांस्कृतिक उपज हैं, और जल, जीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी हैं।”^२ ग्राम्शी की एक ओर विचार उल्लेखनीय है- “समाज के क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए ये लोक मानस तथा लोक व्यवहार को समझना है; लोक मत को समझना है। आगे वे कहते हैं - प्रत्येक वर्ग का अपना लोक मत होता है (Common sense) और साधु मत भी (Good Sense) जो उसकी विश्व दृष्टि है।”^३ लोकमत के निर्माण जनता के इन्द्रिय बोध और अनुभव से बनता है। इसलिए उसमें बौद्धिक तत्वों की प्रधानता होती है। लोक मत दर्शन को लोकवृत्तांत की रचना भी करना है।

१ Gramsci, www.international-gramscisociology.org

२ Gramsci, www.international-gramscisociology.org

३ Gramsci, Joseph Francese (ed.) *Political culture and social theory*, Every social stratum has its own 'common sense' which is ultimately the most widespread conception of life and morals. Every philosophical current leaves a sedimentation of 'common sense' this is the document of its historical reality. Common sense is not something rigid and static; rather, it changes continuously, enriched by scientific notions and philosophical opinions which have entered into common usage. 'common sense' is the folklore of philosophy and stands midway between real 'folklore' (that is, as it is understood) and the philosophy, the science, the economics of the scholars. 'Common sense' creates the folklore of the future, that is a more or less rigidified phase of a certain time and place, p. 124. Religion and common sense do not coincide, but religion is a component of disjointed common sense. There is not just one 'common sense' but it too is a product of history and a historical process. Philosophy is the critique of religion and of common sense, and it supercedes them. In this respect, philosophy coincides with 'good sense', p. 131.

प्रो. अच्युतन जी का मत यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि “ग्राम्शी का इस विचार का मूल दार्शनिक स्वरूप ‘पदार्थ ही परमसत्य वाले’ भारत के पुराने लोकायती दर्शन में ढूँढा जा सकता है जो भारत के दलित या आदिवासी समूह के सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि की ओर प्रकाश डालता है। वास्तव में इस तरह की जन संस्कृति के कारण ही ऐसा दार्शनिक सिद्धान्त का जन्म तथा प्रचार प्रसार अधिक मात्रा में हुआ जिसका आधार वैज्ञानिक है। भारत में राजाओं, ब्राह्मणों या वर्चस्ववादियों की परंपराएँ है तो दलित -आदिवासियों की परंपराएँ भी हैं।”^१

इस प्रकार हमारी आस्थाएँ, विश्वास, मान्यताएँ वे चाहे अध्यात्मिक हो या अन्य जो पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कारों से बनती रहती हैं। इन्हीं को हम संस्कृति कहते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से दलित कविता अपने भारतीय परिवेश की पहचान कराती है। भारत में समाज सुधार के कार्यक्रमों की लम्बी परंपरा रही हैं। पर समाज नहीं सुधरा। जब भारतीय संस्कृति की बात की जाती है तो समन्वय, बन्धुत्व और एकता की भावना को इसकी विशेषता बताया जाता है। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। सामाजिक अन्याय का शिकार बहुसंख्यक भारत की जनता के लिए तथागतित भारतीय संस्कृति की विशेषताएं अर्थहीन हैं। प्रोफेसर शत्रुघ्न कुमार ने भारतीय समाज के इस कटु सत्य पर प्रकाश डालते हुए अपनी ‘संघर्ष’ शीर्षक कविता में समानता हेतु ‘संघर्ष’ को अनिवार्य बताया है-

“सत्य ज़रूरी असमानता मिटाने के लिए
संघर्ष ज़रूरी समानता लाने के लिए
समन्वय, मेल-मिलाप, बन्धुत्व, एकता

१ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता प्रपत्र, Presented by National Seminar हिन्दी विभाग, बाबासाहब डॉ. भीमराम अंबेडकर विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, २०१६

शब्द सारे अर्थविहीन हो गये अब”^१

सदियों से दलितों को झूठे विश्वास, परंपरा एवं संस्कारों से सताया है, इसके खिलाफ संघर्ष की परंपरा को दलितों ने अपनाया है।

डॉ. चन्द्रकुमार बरठे ‘वसन्तोत्सव’ कविता में यह स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हम और हमारी पूरी नस्ल वसन्तोत्सव और सूर्योदय आज भी इसलिए नहीं देख पा रहे हैं, क्योंकि हमारी आंखें तो पहले ही इस संस्कृति ने निकाल दी थीं। वे लिखते हैं-

“उसकी आंखें तो बहुत पहले ही/ निकाल दी गई हैं
तुम्हारे वसन्तोत्सव की संस्कृति ने/ और काट दिए थे हाथ
ताकि, वे मुट्ठी, की शकल में खडे न हो सकें”^२

जयप्रकाश कर्दम ‘तिनका तिनका आग’ में कहते हैं- दलित समाज की प्रगति में जाति एक बाधा है। तमाम संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारतीय संस्था के सांस्कृतिक मूल्य और जीवन संस्कार दलित व्यक्ति के जाति आधारित शोषण को बरकरार रखे हुए हैं-

“सदियों से वे हमसे
गाली की भाषा में बोलते आ रहे हैं/यह उनकी संस्कृति हैं।”^३

जब हम भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हैं तो हम भूल जाते हैं कि यहाँ अस्सी प्रतिशत दलित वर्ग हैं। सामाजिक संरचना ने उसकी संस्कृति कुत्ते से भी बदतर बनाया है। कवि अमराव सिंह जाटव लिखते हैं-

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. ३१.

२ डॉ. चन्द्रकुमार बरठे, *अधूरी चिट्ठी रोशनी की*, पृ. ३३.

३ डॉ. जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी*, २००४, पृ. १९७.

“अपनी फूहड़ और बेरहम संस्कृति को
ढोल बजा कर/स्वर्णीय बता कर
दलितों, दासों के खून से सींचता इंसान/कैसा बेशर्म इंसान है यह!”^१

भारतीय संस्कृति अत्यधिक मूल्यवान है। लेकिन इस संस्कृति में दलितों के श्रम का कोई मूल्य नहीं के बराबर है। दिन-भर काम करने पर भी अपनी पत्नी और बच्चों की भूख मिटा नहीं सकता। सूरजपाल चौहान ‘भारतीय संस्कृति’ नामक कविता में लिखते हैं-

“भारतीय संस्कृति/ क्या यही मूल्य है
मेरे हाड़ तोड़ श्रम का”^२

कर्मशील भारती अपनी कविता ‘मजूरन’ में सामाजिक परिवेश और मजूरन की ईमानदार मेहनत की तुलना करते हुए कटु सत्य का चित्रण करते हैं- मजूरन जो हर दिन सुबह होने से पहले ही अपने कन्धे पर झोली लटकाए तथा पीठ पर बच्चे को बाँधकर इधर-उधर लोहा बीनती है.. लेकिन वह उदास नहीं है न अपनी मेहनत के प्रति, न भविष्य के प्रति । कर्मशील भारती लिखते हैं-

“वह आश्वस्त है अपने कल के लिए
जो लटका है उसकी पीठ पर।
भयभीत भी नहीं है वर्तमान से
पश है जो चारपाई पर/उसके घर अपाहिज”^३

१ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ८१.

२ सूरजपाल चौहान, कब होगी वह भोर, पृ. ५५.

३ कर्मशील भारती, कमल को दर्द कहने दो, पृ. ९.

हिन्दू संस्कृति में दलितों का कोई महत्व स्थान नहीं है। यह संस्कृति हर क्षण दलितों को आघात पहुँचाती है। 'दलित तुझे'. कविता में रजनी तिलक लिखती हैं-

“हिन्दू संस्कृति के लंबे दाँत,
हर क्षण तेरा लहू पी रहे हैं,
हिन्दुत्व की पाशाविक प्रवृत्ति पर,
एक दिन हल्ला बोलना होगा।”^१

भारतीय संस्कार में अछूतों के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्हें गाँव के बाहर थोड़ी सी जगह दे दिया है। मनुष्य होने पर भी अमानविक प्रवृत्ति ही हमारे संस्कार ने उन्हें दिया है। इस संस्कार के नामकरण पर कवि असंगघोष 'नामकरण संस्कार' नामक कविता में व्यक्त करते हैं-

“जिसका नामकरण/अपनी कुटिल बुद्धि से तूने
चमरोटी/मोचीवाड़ा कर दिया
वाह रे तथाकथित नियंता/क्या गजब का है
तेरा यह नामकरण संस्कार”^२

सामाजिक मेल-जोल के होली, दीपावली जैसे त्यौहार दलितों के लिए एक समस्या बन जाती है। कवि मांसाराम विद्रोही इस त्यौहार का चित्रण इस प्रकार करते हैं-

“फागुन के महीने में मटरा मसूर उठ
कच्चा-पक्का जौ कट, थोड़ा सा अनाज आ”^३

१ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. ३६.

२ असंगघोष, *हम गवाही देंगे*, पृ. ७६.

३ मांसाराम विद्रोही, *दलित मंजरी*, पृ. ४०.

भारतीय संस्कृति में करवा चौथ का महत्वपूर्ण स्थान है। पति की पूजा और भक्ति के लिए पत्नी करवा चौथ का व्रत रखती है। समाज में फैले इस अंधविश्वास का खण्डन करते हैं। डॉ. शत्रुघ्न कुमार 'करवा चौथ' कविता के ज़रिए। वे कहते हैं कि अगर पति पत्नी के बीच सच्चा प्यार, विश्वास और सम्मान का अभाव है तो इस प्रकार का व्रत रखने से क्या फायदा? वे लिखते हैं-

“हो पति-पत्नी में प्यार, विश्वास/आदर-सम्मान एक-दूजे के लिए
तो है असली करवाचौथ नित दिन”^१

'जाति' नामक कविता में कवि ओमप्रकाश 'जाति' शब्द को एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंदर रखते हैं। मानव और जाति का जो अटूट संबन्ध है उसकी ओर उन्होंने इशारा किया है-

“जाति आदिम सभ्यता का/नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को/कर देता है छलनी
एक तुम हो/जो अभी तक चिपके हो जाति से”^२

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में विशेषकर हिन्दू संस्कृति में दलितों को कोई स्थान नहीं दिया है। इन्हें अछूत-अस्पृश्य के रूप में ही देखा है; मनुष्य के रूप में नहीं।

३.१.५.१ परंपरा और मूल्य तथा इतिहास बोध

आज के उत्तराधुनिक संदर्भ में हमारे सामने प्रश्न यह है कि भारतीय परंपरा का ऐसा विवेकसम्मत प्रतिरूप कैसे विकसित करे जो इतिहास दृष्टि की स्वीकृति हो। आज

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १५२.

२ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *अब ओर नहीं*, पृ. २०.

के वैचारिक पर्यावरण में परंपरा, संस्कृति जातीय भावना आदि का महत्व है। परंपरा की पुनर्रचना निरंतर होती रहती है। परंपरा का आधार लोक भी है शास्त्र भी है। लोक परंपरा ही शास्त्र परंपरा का आधार है। परंपरा बनी बनायी नहीं बल्कि उसका क्रमिक विकास होता रहता है। भारतीय परंपरा को वेद -पुराण और शास्त्रों से जोड़ने की प्रवृत्ति सशक्त रही है। उल्लेखनीय बात है कि इन परंपराओं के अतिरिक्त स्वतंत्र जन -जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी इस देश में विद्यमान थी। धर्म निरपेक्ष परंपराएँ इस देश में विकसित हुई हैं। अतः स्वाभाविक रूप से ये स्वतंत्र परंपराएँ शताब्दियों से पोषित हमारी मुख्यधारा परंपरा, संस्कृति, इतिहास संबन्धी अवधारणाओं का खण्डन करती हैं। क्षेत्रीय एवं जानजाती परंपराएँ सशक्त रही हैं। उनके अलग इतिहास एवं पहचान भी थी। परंपरा का सम्मान उसमें था लेकिन साथ-साथ कालांतर में विद्रोह एवं विरोध की परंपराएँ विकसित होती रही। जिनसे भारतीय समाज को नई दिशा और गति मिली। संस्कृति का पूरा महल ऐतिहासिक संदर्भों से निर्मित होता है। जातीय भावना अपने मूल अर्थ में पहले विशिष्ट नृवंशीय शाखाओं से जुड़े संवेदनात्मक लगाव को कहा जाता था। लेकिन आज उसमें क्षेत्रीय भाषिक, तथा सांस्कृतिक तत्व भी मिल गये हैं। फलस्वरूप जाति भावना की व्याख्या गौरव पूर्ण बन गया है। अतः विद्वानों की मान्यता यह है कि परंपरा संस्कृति मूल्य और जातीय भावना एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती है। जब इस तरह की पुनर्रचनाओं की प्रक्रिया ज्ञात, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक और प्रतीकों को अपना लेती हैं तो उस पर भी ज़रूर विचार करना चाहिए। ऐसी एक दृष्टि विशेषकर आधुनिक संदर्भ में दलित कविता के वस्तु और शिल्प में देख सकते हैं।

दलित साहित्य उन सब अंधविश्वासों, विकृत परम्पराओं, भाग्यवादी सोच तथा ईश्वरीय चमत्कार का विरोधी है । विकृत परंपराओं को इंगित करते हुए 'रामभरत पासी' कहते हैं-

“उन सड़ी-गली परंपराओं को/समय रहते दबा दो

मिट्टी में गहरे बदबू फैलाने से पहले/किसी लाश की तरह”^१

‘माटी के पूत’ हरनोटिया का काव्य संग्रह है, माटि के पूत आज़ादी चाहते हैं। क्योंकि स्वातंत्र्य संग्राम में दलितों का बलिदान महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेज़ों की गुलामी से भारत देश तो आज़ाद हो गया पर आज़ादी के साठ साल बाद भी दलित-मजदूर सवणों की गुलामी में जी रहे हैं। कवि कहते हैं कि दलित भी आज़ाद रहना तथा समता-भाईचारे की किरण देखना चाहते हैं। वे सामाजिक सम्मान व अधिकार चाहते हैं ऐसा नहीं हुआ तो मजबूर होकर पुरानी परंपराओं को तोड़ देना चाहते हैं-

“अधिक पैदावार बढा

तोड़ने पुरानी परिपाटी को उसके हथौड़े की चोट

तोड़ देगी असमानता दीवार को”^२

दलित कवि इतिहास को स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसका अतीत में सुख नहीं पीड़ा और यातनाएं मिलती हैं। दलित कवि उस इतिहास का विरोध करते हुए कहते हैं कि यह इतिहास ही झूठा है, जिसे सवणों ने अपने स्वार्थ के लिए उनके अनुकूल रचा है। इतिहास में दलितों को पशुता से कैसे रौंदा गया इसका चित्रण मलखान सिंह अपना ‘आखिरी जंग’ शीर्षक कविता में कहते हैं-

“ओ परमेश्वर ! कितनी पशुता से रौंदा है हमें

तेरे इतिहास ने/ देख, हमारे चेहरों को देख

भूख की मार के निशान/साफ दिखाई देंगे तुझे”^३

१ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ३०.

२ जसराम हरनोटिया, *माटि के पूत*, पृ. ४.

३ कंवल भारती, *दलित निर्वाचित कविताएँ*, पृ. ४१.

दलित कवि परम्परा का विरोध करता है। कट्टरपंथी हिन्दुओं द्वारा दलितों को हजारों वर्षों से निरंतर प्रताडित करना, उनका आर्थिक एवं सामाजिक शोषण करना, उनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करने की परम्परा रही है। आज भी कई दलित शम्बूकों की गर्दन सवर्ण काटते हैं। डॉ.जयप्रकाश कर्दम अपनी 'मेरे अधिकार कहाँ है' शीर्षक कविता में कहते हैं-

“सदियों से शम्बूकों की/ गर्दन कटने की परम्परा
इस देश-धरा से उठ जाए
इस आशय का स्वीकार कहाँ है”^१

सामाजिक रूढ़ियाँ सामाजिक संरचना के चारों ओर ऊँच-नीच का भाव पैदा करती हैं। इसलिए दलित कविता ने इन रूढ़ परंपराओं को समाप्त करने का संकल्प लिया है। कवि कहते हैं-

“अरे, नेपथ में कोई है/ जो सूरज ले आए मंच पर”^२

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं -

“सदियों के मोह-राग-विराग/और भाग्य, भय, भगवान की धारणा
पुराने कपड़ों की तरह तो उतारे नहीं जा सकते/ये वे नश्वर हैं
जो जान पर झेलकर/जीए जाते हैं।”^३

कवि लक्ष्मीनारायण सुधाकर जाति-विहीन व्यवस्था की परिकल्पना करते हैं और मनुस्मृति की परंपरा को विस्मृत कर देना चाहते हैं-

१ जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. ४६

२ डॉ. देवेन्द्र दीपक, हम बौने नहीं, पृ. ४०.

३ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मूक माटी की भूखरता, पृ. २८.

“विस्मृत हो मन से मनुस्मृति सामाजिक आजादी आए।

फिर जाति-विहीन व्यवस्था का निरछल समाज हो भारत में।”^१

डॉ. भारती दलित कविता के द्वारा मनुष्यता का विरोध करने वाली हर प्रथा को तोड़ देना चाहता है-

“लाजमी है कि थूकें/उस प्रथा पर

करती है जो, मनुष्यता का विरोध/

जो तोड़ती हो मनुष्यता के रिश्ते को”।^२

कवि सुदेश तनवर ‘मैं और वे’ कविता के ज़रिए भगवान पर सवाल लगाते हैं ।
सवर्ण लोग भगवान के गुणगान करते हैं तो दलित लोग सदियों से झेल रहे अनुभव के तीष्णता व्यक्त करते हैं-

“उनकी जातीय नशे में चमकती आँखें/मेरा

फेंके गुए ‘तेजाब’ से झूलसा मुँह।

वे कहते/भगवान की महिमा/मैं कहता/सदियों की साजिश”।^३

दलित वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए रूढ़ परम्पराओं का विसर्जन करना होगा क्योंकि ये शोषण का एक महत्वपूर्ण अस्त्र रहा है। ‘परंपरा के विसर्जन’ नामक कविता में डॉ. कुसुम वियोगी लिखते हैं -

“करना चाहता हूँ विसर्जन

रूढ़िवादी परंपराओं का/तेरी ही पावन गंगा में”।^४

१ रामचन्द्र चदुर्वेदी, बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, पृ. ९९.

२ सी. बी. भारती, *आक्रोश*, पृ. २४

३ विमल थोरात, *सूरज बडत्या*, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. ६५.

४ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकडे, टुकडे दंश*, पृ. ६२.

सूरजपाल चौहान 'क्यों विश्वास करूँ' शीर्षक कविता में दलितों के प्रति गैर दलितों के विश्वासघात की परंपरा को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

“तुम्हारे-दिलों में भरी हैं कलुषता
और ओछी प्रतिद्वन्द्विता/फिर भला मैं/कैसे विश्वास करूँ
तुम्हारी सहिष्णुता/एवं भाईचारे की भावना पर”^१

नवेन्दु महर्षि की 'शूद्र कहने भर के लिए हिन्दू है' नामक कविता में कवि ने हिन्दू धर्म की परंपरा पर प्रहार किया है। दलित होने के कारण सदियों से इन्हें सवर्ण वर्ग मानता ही नहीं, ऐसे लोगों को जीने के लिए एक कोना तक नहीं के बराबर हैं। कवि लिखते हैं-

“यानी कि/क्या कहीं कोई
एक भी ऐसा बिंदु है/ जिससे कि यह सिद्ध
होता हो/कि शूद्र भी हिन्दु हैं,”^२

साहित्य का एक मूल्यवान खजाना है इतिहास। सूरजपाल चौहान ने 'नकारता हूँ तुम्हारे इतिहास को' नामक कविता में इतिहास पर प्रहार किया है। इतिहास में तो केवल सवर्णों का वर्णन है। दलितों के जीवन, श्रम और पीड़ा आदि का कोई स्थान नहीं है। जो इतिहास यथार्थ नहीं है उसका स्वीकार कैसे करूँ। वे लिखते हैं-

“नहीं मानता/तुम्हारे/इतिहास को अपना इतिहास
क्योंकि/तुमने लिखी ही नहीं गाथाएँ/ मेरे पुरखों की।”^३

१ सूरजपाल चौहान, *क्यों विश्वास करूँ*, पृ. २६.

२ नवेन्दु महर्षि, *दलित पताका*, पृ.१८.

३ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर*, पृ. ६९.

सतनाम सिंह 'भाग्य और भगवान की अफीम' नामक कविता में शिक्षा एवं जीवन के मूल्य की चेतना देकर हमें जागृत करते हुए कहते हैं -

“मैं आया हूँ /होश में
मेरी कलम/धार्मिक अफीम की इस खेती को
अमानवीय बता रही है
वे मुझे/ सिरफिरा और बागी बता रहे हैं।”^१

जयप्रकाश कर्दम 'सत्य' नामक कविता में मानव का मूल्य जो सत्य पर आधारित है। इसका उद्घाटन करते हैं। ऐसा भी मनुष्य है जो सत्य देखने, सत्य सुनने, सत्य बोलने पर भी हिचकते हैं और बोलने वालों को अनदेखा करते हैं। निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं-

“जो सत्य को नहीं रहने देते सत्य
उसके साथ बलात्कार कर
तार-तार करते हैं
सत्य के आवरण में/ असत्य के मूल है
मनुष्य की आँखों में धूल है।”^२

मोहनदास नेमिशराय 'पहाड़ तुम कब बदलोंगे' नामक कविता में कवि ने दलितों को पहाड़ से तुलना की है। परंपरा से वे जंगल, जल, धरती आदि का संरक्षक हैं फिर भी हम उसको पीड़ा देते हैं। उनके जीवन के आधार एवं मूल्य पहाड़ ही है। वे लिखते हैं-

“तुम्हारी छाती को रौंदते हुए
हज़ारों लोग/प्रतिदिन तुम पर चढ़ते हैं

१ विमल थोरात्, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ.९३.

२ जयप्रकाश कर्दम, *बस्तियों से बाहर*, पृ. २४.

और जख्म देकर उतर जाते हैं/पहाड़ तुम कब बदलोगे” ?^१

‘चोरी’ नामक कविता में रजनी तिलक ने नारी की स्थिति को व्यक्त किया है। संस्कृति संपन्न राष्ट्र भारत में नारी की अवस्था दासी के समान है। वह संस्कृति के मूल्यों को ढोलती रही है। अब वह वजूद को ढूँढ़ रही है-

“हज़ारों हजार नाम में धरी
असंख्य उपमाओं से सजी स्त्री
ढूँढ़ रही है वजूद कि/खुद को पहचान सके”।^२

हरनोटिया की ‘मत छोड़ो इन दलितों को’ शीर्षक कविता में दलितों का समतावादी स्वर, स्वाभिमान और रक्षक रूप को अंकित किया गया है। कवि ने दलित वर्ग के मूल्य को समझाया है-

“मत छोड़ो इन दलितों को/ये राष्ट्र के सिपाही भी हैं।
आये आँच देश पर अगर
शत्रु के लिए तबाही भी हैं।”^३

डॉ. बाब साहब अम्बेडकर ने अंधविश्वास, विकृत रूढ़ियों, परंपराओं, धर्म, देव-देवताओं, आडंबरों, भगवान, भाग्य, पुर्नजन्म का फल इन सबको नकारा और अवैज्ञानिक सोच तथा ईश्वर में अंध-आस्था को भी नकारा। जो मनुष्य को बर्बरता की हद तक पहुँचा देती रही है। इसका उन्होंने तार्किक एवं वैज्ञानिक ढंग से खंडन किया। इसी से दलित समाज एक विचारवान, तर्कशील मनुष्य बन सकता है। मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में-

१ मोहनदास नैमिशराय, *आग और आंदोलन*, पृ. ६०.

२ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. ९.

३ हरनोटिया, *माटी के पूत*, पृ. १०९.

“ईश्वर की मौत उस पल होती है/ जब मेरे भीतर उठता है सवाल
ईश्वर का जन्म/किस माँ की कोख से हुआ
ईश्वर का बाप कौन?’^१

डॉ. राजपाल सिंह ‘राज’ भाग्यवाद को एक बन्धन और दुःखों का मूल मानते हैं-

“रोटियाँ महुँगीं मनुज के प्राण से,
ओट में भगवान के दानव पता।
क्रूर धार्मिक दोग ने जग को छला।
भाग्य रेखा से मनुज बँधता रहा”^२

धर्म के ठेकेदारों और सवणों ने दलितों को हमेशा यह समझाते और विश्वास दिलाते आ रहे हैं कि ईश्वर है। अब दलितों के सामने यह सवाल खड़ा हो जाता है कि अगर ईश्वर की इच्छा और आदेश के बिना पत्ता तक नहीं हिलता, तो क्या दलितों पर आज तक जो अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं, उसका कारण भी ईश्वर ही हैं? अगर ईश्वर होता तो अन्याय क्यों करता ? इसलिए दलित ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है। जयप्रकाश कर्दम ‘शुक है तू नहीं है’ शीर्षक कविता में कहते हैं-

“तेरी इच्छा के बिना/ पत्ता तक नहीं हिल सकता
यानी दुनिया में अच्छा-बुरा/ जो कुछ भी होता है
उस सबका कारण तू है”^३

मूर्ति और मंदिर ही नहीं ऐसे बहुत सारी वस्तुएँ हैं, समाज में जिसका निर्माता खुद दलित है। किन्तु बाद में उसे स्पर्श करने का और भोगने का अधिकार इसे नहीं है।

१ पुत्री सिंह (सं), भारतीय दलित साहित्य परिप्रेष्य, पृ. ३३३.

२ डॉ. कालीचरण स्नेही, दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, पृ. ३६.

३ जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. ३५.

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी 'तुम्हारी गौरव गाथा' शीर्षक कविता में उन मूर्ति रूपी देवों से सवाल पूछते हैं कि इतना अन्याय देख कर भी तुम्हारी आस्था क्यों जागृत नहीं होती-

“क्यों नहीं जागती आस्था/देवों की पाषाण मूर्तियाँ
जो गढ़ी है मैंने ही/ छैनी-हथौड़े के सधे वार से”

दलित कविता के कवियों ने धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए दलितों की स्थिति को व्यक्त किया है। उस बिडम्बना को बताया है जहाँ गाय को पूजा जाता है और आदमी को कुचला जाता है-

“तुम उदार थे/गाय के प्रति
और हम थे आदमी की शक्ल में निरे गाय
हमने दिया दूध खाय घास फूस और दीं/अपनी संतानों बैल बनने के लिए
और तुम स्वामी अनुदार स्वार्थी ढोंगी अपार”^१

सुशीला टाकभौरे दलित वर्ग में साहस के अभाव की बात करती हैं। रूढ़ियों को तोड़ने के लिए सक्त प्रयास की आवश्यकता है। वह निरन्तरता दलित वर्ग को जारी रखनी होगी तभी सफलता प्राप्त होगी-

“रूढ़ियों को तोड़ने की बात/हम करते अवश्य हैं
पर उस लहर की तरह नहीं
जो सागर तट को हर क्षण/काटती रहती है”^२

१ श्योराज सिंह बेचैन, *क्रॉच हूँ मैं*, पृ. ३०.

२ सुशीला टाकभौरे, *साहस, चेतना के स्वर*, पृ. ५०.

दलित वर्ग में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ मान्यताओं पर डॉ. चन्द्रकुमार वरठे प्रहार करते हुए धर्म के नाम पर फैले पाखण्ड, पत्थर-पूजा, पण्डों और कर्मकाण्डों की धज्जियाँ उडाते हुए लिखते हैं-

“.....पत्थरों के सामने साष्टांग दण्डवत् करती है
नाक रगड़ती और नंगी होकर
औलाद की कामना करती औरतों को
आदमी-मर्द नज़र आंते हैं नपुसंक”^१

धर्म के नाम पर होने वाले अंधविश्वास, जाति-पांति, साम्प्रदायिक विषमताओं पर प्रहार करते हुए वैज्ञानिक धरातल पर आधारित यथार्थ समाज की सभ्यता पर विचार-विमर्श करता है। धार्मिक अनुष्ठानों का खंडन करते हुए तथा वैज्ञानिक अधिकार पर व्याख्या करते हुए ईश गंगानिया लिखते हैं कि-

“दलित शोषितों को/अपना गुलाम बना लिया
यह ढोंग अब ज्यादा नहीं चलेगा
वेद स्मृतियों का कूड़ा करकट
अब धू-धू जलेगा”^२

कवि अरुण कुमार गौतम सवर्णों से पूछते हैं- कब तक तुम देवी-देवताओं के अंधविश्वास फैलाओगे, अब उन्हें भी सच्चाई पर डर आ गया है। ‘पच्चास साल’ नामक कविता में वे लिखते हैं-

“कब तक फैलाओगे देवी-देवताओं के/नाम पर अंधविश्वास

१ डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, *अनाम बस्तियों के देश में*, पृ. ६.

२ ईशा कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा*, पृ. १७.

बुद्ध, कबीर, रैदास, बाबा से डरते/तुम्हारे भगवान आपने देखा नहीं”^१

ईश्वर का खंडन करते हुए असंगघोष ‘कहाँ हो ईश्वर’ नामक कविता में ईश्वर के वास-स्थान पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए लिखते हैं-

“ईश्वर !तू है तो,/ है कहाँ ?
स्वाद लोलुपों की जिह्वा पर/भव्य प्रसादों में बैठें
कपटी बामनों/धन्ना सेठों की तोंद मे या”^२

‘आखिर क्यों’ नामक कविता में असंगघोष कहते हैं कि शास्त्रधारित भगवान मनुवाद को स्थापित करने के लिए हमारे साथ युद्ध के लिए सदा तैयार हैं-

“शिखाधारियों के षडयंत्रों को रोकते
दलितों पर होते दमन को थामते
शास्त्रधारी पत्थरदिल भगवान”^३

दलित वर्ग धर्मग्रन्थ का बोझ ठुकराकर मुक्ति का गीत गाना चाहते हैं। वर्ण, जाति, उच्च, नीचता, छुआछूत की जड़ धर्मग्रंथ हैं। इसलिए मनुस्मृति को जलाया गया। प्रो. दामोदर मोरे धर्म ग्रन्थों का खंडन करते हुए लिखते हैं-

“यदा यदा हि धर्मस्य-
इसका बोझ ढोते सदियाँ गर्यीं
फेंक देंगे अभी हम/अब गायेंगे मुक्तिगान”^४

१ रमणिका गुप्ता (सं), दलित चेतना, पृ. ८३.

२ असंगघोष, हम गवाही देंगे, पृ. ४६.

३ असंगघोष, खामोश नहीं हूँ मैं, पृ. ३५.

४ प्रो. दामोदर मोरे, सदियों से बहते जख्म, पृ.

सोहनपाल सुमनाक्षर 'पूर्वजन्म का ढकोसला' कविता में दलित समाज में व्याप्त अधंविश्वास को यूँ व्यक्त करते हैं-

“मेरे परदादा मर गये जूठन खाते/उतरे चिथड़े पहनते
खेत बोते-जोलते/इसे पूर्ण-जन्मों का कल मानते-मानते
और जर्मीदार/फूलता गया/फलता गया
जर्मीदार का वंश/बढ़ता गया/ आकाश बेल की तरह
इनका खून चूसने-चूसते/धर्म का भय दिखाकर
नीच कर्मों का फल बताकर.....
पर/अब मैं पूर्ण जन्म नहीं वर्तमान देखता हूँ।”^१

कंवल भारती धार्मिक शास्त्रों और वेदों की अतार्किक उक्तियों को चुनौती देते हुए सवर्ण समाज से पूछते हैं-

“यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रह्मा के पैर से हुए पैदा
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?”^२

ओमप्रकाश डगाले कहते हैं कि यहाँ राक्षस से नहीं, देवताओं से डर लगता है। जितना हथियार देवताओं के चित्र में हैं, उतना अन्य किसी के पास नहीं है। हिन्दु धर्म की धार्मिक भावना डरावनी है-

१ सोहनपाल सुमनाक्षर, *अंधा समाज बहरे लोग*, पृ. १७-१८

२ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. १३.

“मेरी स्मृति में/राक्षस नहीं
डरावने देवता है/ जो चैन से सोने नहीं देते मुझे”^१

लक्ष्मी नारायण सुधाकर दलितों को स्वाभिमान और सम्मान जगाते हुए कहते हैं कि अंधविश्वास और अशिक्षा ही तुम्हें दलित बनाए है इन कमज़ोरियों का त्याग करो-

‘घोर अंधविश्वास-अशिक्षा पिछड़ेपन की जड़ है।
शासन सत्ता पर सशय जगत की ढीली अभी पकड़ है।
‘हरिजन-गिरिजन’ शब्द जाल की जला रही हैं ज्वाला’^२

दलित कविता सन्देश देती है कि रूढ़ियों को तोड़ दो जो तुम्हारे मार्ग में अवरोधक बन के खड़ी है। ‘पत्थर देवता’ नामक कविता में कवयित्री ने हिन्दू विश्वास, और आचारों पर छोट पहुँचाया है। अपने को जाग्रत करते हुए कहती है-

“हे देव मुझे नहीं चाहिए
तुम्हारे इस भव्य मंदिर में प्रवेश
नहीं चाहिए तुम्हारा दर्शन और प्रसाद/क्योंकि
तुम पत्थरों की/ इस सुंदर इमारत में रखे
गढ़े हुए पत्थर हो और मैं पत्थरों के बीच/ पत्थर नहीं होना चाहती”^३

दलित कविता का सांस्कृतिक एवं परंपरा का स्वर इतना तीव्र है कि इसे दलित कविता से अलग नहीं किया जा सकता। दलित कविता समाज में प्रचलित झूठी परंपरा एवं अंधविश्वासों का विरोध करते हुए दलितों को अपनी संस्कृति एवं इतिहासबोध से

१ डॉ. धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श*, पृ. २९.

२ लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *उत्पीड़न की यात्रा*, पृ. २९-३०.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मुझे मत दो*, पृ. ४५.

अवगत कराते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन से इसकी वास्तविकता को जानने की कोशिश की है।

३.१.६ दलित कविता में नारी

पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं। वेदों में स्त्री देवी, काली, सर्वजननी माता, जगत परिपालिका तथा पुरुष के अर्धांगिनी है। भारत के इतिहास में ऐसा भी एक समय था जहाँ नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिये जाते थे। सामाजिक बदलाव के साथ साथ स्त्रियों की सामाजिक स्थितियों में भी बदलाव आने लगे। उन्हें चार दीवारों में बंध करके तथा शिक्षा से वंचित कराने लगे। वे केवल भोग की वस्तु बन गयी थी। जाति के आधार पर स्त्रियों में भी भेद-भाव होने लगे। विशेषकर दलित स्त्रियों के ऊपर हो रहे अत्याचारों में कोई कमी नहीं हैं। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से नारी मुक्ति, नारी आंदोलन, नारी सशक्तीकरण, विशेषकर दलित स्त्रियों की समानता और न्याय की पुकार आदि का विश्लेषण कर सकते हैं।

पश्चिम में नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी में हुई थी। 'मेरी वाल स्टोल क्राफ्ट' ने इंग्लैण्ड में नारी के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई थी। 'पलोरा ट्रिस्टन' ने महिला संगठन की स्थापना की। जान स्टुअर्ड मिल (१८०६-१८७३) ने इंग्लैण्ड में अपनी पुस्तक 'द सब्जेक्शन आफ विमन' द्वारा नारी मुक्ति और अधिकारों के लिए आवाज़ उठाया। बाद में इस तरह सामाजिक आंदोलनों से प्रेरणा पाकर नारी सहित्यिक आंदोलन की शुरुआत हुई। इसके ज़रिए कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुके हैं। Simon De Bavour 'The Second sex' (1949), Virginia Woolf 'A room of one's own' (1929), Germaine Greor 'The Female Eunuch' (1970), The whole Women (1999), Mary wolfstonecraft 'The vindication of the Right of women with structurey on Political and moral subjects' (1792) जैसी पुस्तकें नारी के जीवन और चिंतन को उत्तरआधुनिक संदर्भ में विशेष रूप से प्रभावित किया है। भारत में प्रमुख रूप से नारी

विषयक अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। जैसे चित्रा मुद्गल की 'एक जीवन अपनी' (१९९०), प्रभा खेतान की 'छिन्नमस्ता' (१९९३) मृणाल पाण्डे की 'परिधि पर स्त्री' (१९९६) मैत्रीय पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आदि। नारी स्वतंत्र रूप से सोचने लगी तथा पुरुष प्रधान समाज में बराबरी के लिए आवाज़ उठाने लगी। उत्तरआधुनिकता ने स्त्रियों को परंपरागत भूमिका से हटाकर उसके अस्तित्व को पहचानने में सहायक रहे। नारी समस्याओं पर मुंशी प्रेमचन्द, मोहन राकेश, कमलेश्वर, शंकर शेष, निराला, पंत आदि साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की है। महिला लेखिकाएँ तथा कवयित्रियाँ भी नारी समस्या को विविध रूप देकर समाज के सामने रखा है। उनमें प्रमुख है उषा प्रियंवदा, मालती जोशी, अमृता प्रीतम, मेहरुत्रीसा परवेज़, मन्नू भंडारी, सुशीला टाकभौरे, रजनीतिलक आदि का नाम उल्लेखनीय है।

दलित कविता की स्त्री भी पुरुष भेद को मिटाकर एक समानता लाना चाहती है। वह अपने अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को पहचान लिया है तथा शिक्षित होकर अपने अधिकार के लिए लड़ना चाहती है। वह स्वयं को इतने शक्तिशाली रूप में देखना चाहती है कि आगे कोई उस पर अन्याय और अत्याचार न कर सकें और वह परंपरावादी मनुवादी युग फिर कभी लौटकर न आ सके। सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविता में व्यक्त किया है कि आज की चेतनशील नारी अपनी रक्षा करने में समक्ष है। वे कहती हैं-

“मैं नहीं बेबस/न मैं लाचार हूँ
 अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हूँ मैं
 समय आने पर/तलवार भी बन सकती हूँ ।^१

दलित नारी का जीवन आज भी गुलामी के अलावा कुछ नहीं, समाज व्यवस्था के प्रति कवयित्री नारी को यह सचेत करती है-

१ सुशीला टाकभौरे, तुमने उसे कब पहचाना, नवनीत की पुतली, पृ. ४५.

“तुम्हारे माथे पर यह/भारी डगमगाती निष्ठा की बालटी नहीं
तुम्हारी है सिचत है/जो सदियों से मनुष्य को समाज ने
अपने और तुम में/अन्यत याद लाने के लिए रखा है”^१

भारतीय जीवन में स्त्री की स्थिति दलितों से भी बुरी है। यदि उसका जन्म निम्न तबके में हो तो उस पर पड़नेवाले अमानवीय व्यवहारों की संख्या अधिक है। ‘मध्यप्रदेश के इन्दौर जिले में एक दलित महिला पर इसलिए अत्याचार हुआ कि वह महिला वहाँ के विधायक के नल कूप पर पीने का पानी लेने गई थी। इस अपराध के लिए उसे सारे गाँव में निर्वस्त्र घुमाया और उस पर ट्रैक्टर चढाया भी गया।’^२ ऐसी कई घटनाएँ आज भी घटित हो रही हैं।

भारतीय समाज में दलित एवं नारी सदियों से पीड़ित रहे हैं। कवि शेखर नारी शक्ति को चित्रित करते हुए नारी मुक्ति की कामना करते हैं। ‘औरत’ नामक कविता की पंक्तियाँ हैं-

“नारी, दर्द को ठेंगा दिखाती है,/भविष्य को निहारती है, कहारती है
और देती है संस्कृति को नाम, पहचान/फिर भी क्यों आज और शान में
ली जाती है औरतों की जान”^३

स्त्री कई रूपों में हैं- माँ, बहन, पत्नी, बेटी, विधवा आदि। फिर भी एक स्त्री जन्म से मृत्यु तक उसकी गुलामी का सिलसिला जारी रखती है। इसलिए शांति यादव अपनी ‘उधार की ज़िन्दगी’ शीर्षक कविता में लिखती हैं-

१ नीरा परमाल, प्रतिरोध, युद्धरत आम आदमी, दलित चेतना, पृ. १४४.

२ मिनिप्रिया आर, दलित जीवन का अधिकार और निर्मला पुतुल की कविता, पृ. ७९,

३ शेखर, उजालों के कछार पर, पृ. २८

“वह अपने लिए नहीं/औरों के लिए जीती है
इसलिए औरत/एक उधार की/जिन्दगी जीती है।”^१

भारतीय पुरुष प्रधान संस्कृति नारी को श्रेष्ठ, महान और पूजनीय कहती है। भारत को भारत माता, गाय को गोमाता, धरती को धरती माता कहा गया है। स्त्री घर की रोशनी है, समाज का गहना है आदि। दूसरी ओर उस पर घोर अत्याचार, बलात्कार, तिरस्कार किया जाता है।

‘तुम ने उसे कब पहचाना’ नामक कविता में सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि हीरा बहुत मुश्किल से मिलता है। उसे ढूँढने के लिए कोयला खदानों में जाना पड़ता है। लेकिन घर में स्त्री-रूपी हीरे को जलाया जाता है।

“कोयला खदानों में/हीरा ढूँढा जाता है
मगर घर का हीरा/कोयला जैसा/जलाया जाता है
उपेक्षा की ठंडक और/ आक्रोश के तेजाब से
नारी व्यक्तित्व को/ हमेशा रौंदा जाता है।”^२

स्त्री चाहे किसी भी कुल, धर्म, जात, वर्ण की क्यों न हो, सबसे पहले वह औरत है। सब औरत की प्रसव पीड़ा एक जैसी है। सब औरतों के हृदय में एक-सा वात्सल्य और ममता है। फिर भी हर स्त्री की सामाजिक स्थिति अलग है। रजनी तिलक सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री में अंतर अपनी ‘औरत-औरत में अंतर’ शीर्षक कविता में बताती हैं-

“एक सतायी जाती है स्त्री होने के कारण
दूसरी सतायी जाती है स्त्री और दलित होने पर

१ कवंल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. २०३.

२ वही, पृ. १४०

एक तड़पती है सम्मान के लिए
 दूसरी तिरस्कृत है भूख और अपमान से
 प्रसव पीड़ा झेलते फिर भी एक सी/जन्मती है एक नाले के किनारे
 दूसरी अस्पताल में/ एक पायलट है
 दूसरी शिक्षा से वंचित है/ एक सत्ताहीन है
 दूसरी निर्वस्त्र घुमायी जाती है/ औरत नहीं मात्र एक जजबात
 हर समाज का हिस्सा/ बंटी वह भी जातियों में
 धर्म की अनुयायी है/ औरत औरत में भी अंतर है।^१

समाज की ऐसी स्थिति है कि जब पत्नी मर जाती है तो पति दूसरी शादी कर लेता है। चाहे उसके दो-तीन बच्चे क्यों न हो। किन्तु किसी स्त्री का पति मर जाते हैं तो उस समय उसके गोद में एक-दो साल का बच्चा होता तो वह दूसरी शादी नहीं करेगी। अपना सर्वस्व उस बच्चे के लिए अर्पण कर देती है। यह त्याग की प्रवृत्ति स्त्री में अधिक मात्रा में दिखायी देती है। सब लोग उस स्त्री को समझाते हैं कि अकेली इतनी लम्बी उम्र कैसे काटेगी? तब जयप्रकाश कर्दम की 'कलिया की मौत' शीर्षक कविता की साहसी विधवा कहती है-

“पुत्र मेरे साथ में है अकेली हूँ नहीं
 पाल लूँगी पेट अपना कर मजूरी में कहीं
 न किसी को कष्ट दूँगी न बनूँगी बोझ ही
 सहानुभूति भी किसी की चाहिए मुझको नहीं”।^२

१ रजनी तिलक, पदचाप, पृ. ४१.

२ जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृ. ५०.

दलित कविता लड़की पर होनेवाले अन्याय पर प्रकाश डालती है। लड़की जीवन साथी को खुद चुनना चाहती है, लेकिन माता-पिता उससे सहमत नहीं। परिवारवाले जिसकी ओर इशारा करती है उसे ही शादी करनी पड़ती है। चाहे वह बूढ़ा भी हो। आखें रहने के बावजूद भी लड़की अंधी है, अंधी इसलिए कि वह अपने जीवनसाथी को खुद नहीं चुन सकती है। लड़की इस अंधेपन को और अंधेरे को दूर करना चाहती है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' अपनी 'अंधेरा समाज' शीर्षक कविता में कहते हैं-

“लड़की मन की/और आखों में झोंकी हुई धूल

साफ करना चाहती है/क्योंकि अंधेरा/ कुदरता का नहीं, समाज का है”^१

दलित कविता माँ की विवशता पर प्रकाश डालती है। वह गरीब और लाचार होने के कारण उसका फायदा उठाते हैं या फिर बलात्कार करते हैं। परिणाम से जन्मे उस बच्चे को पिता का नाम नहीं दिया जाता, समाज उनका उपहास उठाता है। जहां उस स्त्री की कोई गलती नहीं फिर भी उसे व्यभिचारिणी कहा जाता है। जयप्रकाश कर्दम अपनी 'अक्करमासी' शीर्षक कविता में कहते हैं-

अपनी माँ के कुकर्मों के कारण

नहीं हूँ मैं अक्करमासी

मैं उसकी विवशता का परिणाम हूँ

पाटील की औलाद होकर भी

बाप से बेनाम हूँ”^२

दलित नारी सवर्ण समाज के भेद-भाव के खिलाफ लड़ती है। वह अपनी दुनिया खुद बनाना चाहती है। कावेरी 'खाईयाँ' नामक कविता में लिखती हैं -

१ कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ. ९३.

२ जयप्रकाश कर्दम, गुँगा नहीं था मैं, पृ. ४४.

“पाट दूँगी खाईयाँ/जो फासले बढे
अपने हौसलों के पंख से/तय करूँगी दुनिया”^१

दलित महिला अब केवल रसोईघर तक सीमित नहीं है बल्कि वे दलित मुक्ति की लड़ाई में रचनात्मक लेखन के द्वारा सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपनी भागीदारी तय करने लगी है। नरेश कुमारी ‘दोहरा अभिशाप’ नामक कविता में समाज में दलित महिला की वास्तविक स्थिति को व्यक्त करती हैं -

“एक जिन्दा लाश
खिलौना गाडी में जलती लाल बत्ति जैसी
इस पुरुषवादी, सवर्ण समाज में
औरत का जीवन है/ अभिशाप”^२

कवि दिलीप कठेरिया ने ‘नीली रोशनी’ कविता के ज़रिये नारी मुक्ति पर प्रकाश डाला है-

“मेरे वक्त की बेटियाँ/अब उम्र से पहले
ब्याही नहीं जायेंगी/क्यों कि उन्होंने अब
ज़िन्दगी के पत्रों पर/ लिखना सीख लिया है”^३

आज स्त्री विमर्श पर खूब लिखा जा रहा है। महिला सशक्तीकरण का खूब प्रभाव आ रहा है, और पुरुष वर्ग बढ-चढकर भाग ले रहा है स्त्रियों को ताकतवर बनाने का प्रयास कर रहा है। ये सिलसिला तो कब तक चलेगा। अ. ल. उके लिखते हैं-

१ विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृ. २०.

२ वही, पृ. २२.

३ वही, पृ. ८९.

“पुरुष का लिखना/नारी पर/कुछ वैसे ही है जैसे.....
कारखाने के मालिक द्वारा मजदूरों का नेतृत्व करना”^१

सी. बी. भारती का मानना है कि आज युग बदल चुका है। अब स्त्री पराधीन नहीं रहेगी वह विद्रोह कर देगी उन व्यवस्थाओं के खिलाफ जो उसे पराधीनता की जंजीरों में जकड़ती है-

“अब कोई द्रोपदी जन्म नहीं लेगी
कर देगी वह विद्रोह निर्मलताओं के विरुद्ध”^२

वर्तमान युग नारी मुक्ति और नारी शाक्तीकरण का युग है। फिर भी औरत समाज के कठपुतली है। किसी न किसी तरह उसे सताई जाती है। किरण देवी भारती ‘तीन-तेरह का जाल- बट्टा’ नामक कविता में दलित अनपढ़ नारी की हालत व्यक्त करते हुए लिखती हैं-

“अनपढ़ी हूँ कलंकित हूँ/अभिशाप की गठरी लदी है
कौन सी शक्ति है/जो मुक्त करेगी”^३

‘औरत कमजोर नहीं’ नामक कविता में पुष्पा विवेक कहती हैं कि अब औरत टूटकर बिखरने वाली मोतियां नहीं है। अब वह स्वाभिमानी बन गई है-

“जीवन की पथरीली राहों पर
गिरकर संभलना सीख लिया है
औरत हूँ कच्चे धागे में पिरोई

१ अ. ल. उके, पत्थर उठाते हाथ, पृ. २५.

२ सी. बी. भारती, द्रोपदी, आक्रोश, पृ. ५३.

३ रजनी तिलक (सं), समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, पृ. २४५.

कोई मोतियों की लड़ी नहीं/जो टूट कर बिखर जाऊं”^१

डॉ. रजतरानी मीनू ‘क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी’ नामक कविता में स्वर्ण स्त्री और दलित स्त्री के शारीरिक शोषण पर भेदभाव के विरुद्ध वह आवाज़ उठाती हुई लिखती हैं-

“हमारे साथ जब होता है बलात्कार
सामूहिक बलात्कार/तब क्यों हिलता नहीं पत्ता एक भी
और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार/तब क्यों हिल गई संसद भी”^२

रजनी तिलक की ‘पिंजरा तोड़कर आई हूँ’ नामक कविता स्त्री-मुक्ति आंदोलन की सशक्त कविता है, साथ में संपूर्ण स्त्री वर्ग की मुक्ति चाहती हुई वे लिखती हैं-

“परिंदा हूँ। मुझे खुला आसमान चाहिए
न बरगला। पिंजरा तोड़कर आई हूँ”^३

‘ज़ीरो हूँ’ रजनी तिलक की महत्वपूर्ण स्त्रीवादी कविता है। समाज में स्त्री का स्थान हमेशा नगण्य माना जाता है। कवयित्री स्त्री को महत्वपूर्ण सिद्ध करती हुई कहती हैं-

“स्त्री हूँ/जोरी हूँ/हर बार प्लस होती हूँ ।
बनती हूँ प्यार का दरिया/आकाशाओं का क्षितिज।
समा लेती हूँ सारी कुँठाएँ/सारी निराशाएँ”^४

१ रजनी तिलक (सं), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन*, पृ. २४६.

२ कादम्बिनी, आगस्त, २००४, पृ. ६९.

३ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. ११.

४ रजनी तिलक, *हवा सी बेचैन युवतियाँ*, पृ. १२.

डॉ. कुसुम मेघवाल की कविता है 'कैसे सहती हो नारी तुम इतनी पीड़ा'? इसमें स्त्री शोषण दमन, उपेक्षा, अपमान, आदि का चित्रण किया है-

“डायन कहकर मारा है तुझे/बीच बाज़ार में
घसीटा है तुझे नंगा करके/पीकर शराब”^१

व्यक्ति के लिए सुरक्षा का कवच है रिश्ते। लेकिन स्त्री के मामले में ये रिश्ते उनकी गरिमा और व्यक्तित्व को खंडित कर देते हैं। डॉ. हेमलता महेश्वर लिखती हैं-

“मैंने तोड़ दिये हैं/वे परफ्यूमड रिश्ते/जो रिसते थे
गंधाते थे/बन मवाद/मेरे ही भीतर/नासूर बन बैठ थे
मैंने/प्रकृति से ली है दीक्षा/अब”^२

ससुराल में दलित स्त्री पर होने वाला अत्याचार की ओर ईशारा करते हुए कवयित्री नीरा परमाल लिखती हैं -

“डायन/आक्रोश में गुर्राते हैं सास-ससुर देवर-जेठ
गुर्राता है गांव/‘मारो’ मार डालो”^३

रघुनाथ प्यासा 'इत मत आईयो रे मनिहार' नामक गीत में, दलित स्त्री जब महँगी चूड़ी पहने तो उसे मुखिया अपमानित करता है। दलित नारी की व्यथा को कवि ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है।

“महँगी चूड़ी पहनी एक बार बड़ी मुसीबत आयी
मुखियानी ने मुखिया जी से तभी शिकायत लगायी

१ रजनी तिलक (प्र.सं), *समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन*, पृ. २०१.

२ वही, पृ. ९५.

३ वही, पृ. ९८.

म्हारे सामने मँहगी चूड़ी
पहने नीच गँवार/चूड़ी कैसे पहनूं रे”।^१

नारी शोषण तथा नारी उत्पीड़न की कहानी अत्यंत पुरानी है। कहीं भी स्त्री को समानता या न्याय नहीं मिल रहा है। हर एक घण्टे में किसी न किसी रूप में इसका शोषण हो रहा है। दलित स्त्री का शोषण वर्तमान समय में बढ़ रहा है। इसके खिलाफ कुछ बोलने वाला नहीं है। इस संदर्भ में ही दलित कविता की प्रासंगिकता है। दलित कविता नारी को स्वाभिमान बनाकर उसे नई ऊर्जा देती है। किसी भी परिस्थिति में लड़ने की ताकत देती है।

३.१.७ दलित कविता का अंबेडकरवादी स्वर

डॉ. बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा भारतीय दलित साहित्य विशेषकर दलित कविता का मुख्य बिंदु है। ‘दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि’ नामक दूसरे अध्याय में दलित आंदोलन और बाबा साहब अंबेडकर की विचार धारा की विशद चर्चा कर चुकी है। दलित साहित्य में भी ‘अंबेडकरवाद’ का विशेष महत्व है। अब हम दलित कविता में अंबेडकरवादी स्वर का विवेचन करेंगे। दलित कविता के युवा हस्ताक्षर महेन्द्र बैनीवाल ने ‘भीम’ शीर्षक कविता में बाबा अंबेडकर का यशोगान इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

“संसद से सड़क तक
गूँज रही है, जिसकी पदचाप।
वो भीम सत्य है,/इतिहास में स्वतः अपने आप”।^२

१ कँवल भारती, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ. २८०.

२ डॉ. रजत रानी मीनू, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३१.

गजराज 'शकुन' बाबा अंबेडकर के तीन विशेष सूत्र को पकड़कर दलितों से उन्हीं के राह में चलने का आह्वान करते हैं -

“अब वक्त आ गया है

शिक्षित बन अधिकार समझने का, संगठित रह नई शक्ति

बनाने का/संघर्ष कर, अपने अधिकार छीनने का”^१

बाबा अंबेडकर दलित मुक्ति का सृष्टा हैं। उनके संघर्षों का ही परिणाम है कि भारत में दलित शिक्षा, समता और समृद्धि का जो थोड़ा सा उजाला देख पाए। उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को नवेन्दु ने 'संसद तो सवर्ण है' नामक कविता संग्रह में समेटने का प्रयास किया है। उनके 'बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर के प्रति' नामक कविता की पंक्तियाँ हैं -

“मनु की/काली-करतूतों की वजह से

रात जितनी अधिक/काली थी/उसकी कोख से

एक दिन उतना ही प्रतिभावन/सूर्य पुत्र पैदा हुआ

जिसके पैदा होते ही/शूद्र वर्णों कारागार के

सब ताले/खुद-ब-खुद टूट गए”^२

डॉ. सुशीला टाकभौरे बाबा साहब के विचारों के वाहक, प्रचारक, बौद्ध के अध्येता, मानव का उपासक है। कवयित्री क्रांति सूर्य से प्रेरणा पाकर उन्नत वर्तमान और प्रगतिशील भविष्य के लिए दलितों का आह्वान करती हैं-

१ डॉ. रजत रानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. १३५.

२ नवेन्दु महर्षि, *संसद तो सवर्ण है*, पृ. ७२.

“स्वयं दीपक बनो/स्वयं प्रकाशित हो
दीप से दीप जलाकर/पूरे समाज को/प्रकाशित कर दो”^१

दलित वर्ग बाबा साहब के रास्ते में चलना चाहते हैं। इसलिए दलित लेखकों के स्वर में अंबेडकरवाद है। कवि असंगघोष ‘गाँधी और मैं’ कविता में लिखते हैं-

“हमें तुम्हारे सिद्धान्त नहीं चाहिए
उन्हें अपनी बकरियों को ही चर जाने दो
हमारे पास बाबा साहेब का दिखाया रास्ता है
हम उसी पर चलेंगे।”^२

कोई शक नहीं डॉ. बाबा साहब दलित साहित्य का प्रेरणास्रोत हैं। उनका समूचा जीवन दलितोत्थान के लिए व्यतीत हुआ। उन्होंने शिक्षा, प्रसार, संगठन, संघर्ष का सूत्र दिया। उनका प्रभाव दलित जीवन पर पड़ा। परिणामतः वह जाग उठा। कवि दामोदर मोरे कहते हैं-

“प्रज्ञासूर्य ने फेंक दिया झाड़ू
दिखा खडू कलम हमारे हाथ।
पिघल गयी परंपरा की गुलामगिरी/जल गयी लाचारी”^३

जिन ब्राह्मणों ने वर्णव्यवस्था बनाई उन्होंने ही दलितों को अनेक जातियों, उपजातियों में विभक्त कर दुर्बल कर दिया। उनके कहने से बाबा साहेब की महानता कम नहीं हो जाती। कवि सवर्णों का उपहास करते हुए ‘महान ही रहेंगे’ नामक कविता में लिखते हैं-

१ सुशीला टाकभौरे, यह तुम भी जानो, पृ. ९७.

२ असंगघोष, हम गवाही देंगे, पृ. ८६.

३ प्रो. दामोदर मोरे, नीले शब्दों की छाया में, पृ. ४६.

“अपनी आदत अनुसार/गरियाते रहना
हमारे मुक्ति-दाता को जीवन भर
मुक्ति-दाता/महान थे/ महान ही रहेंगे”।^१

दलित अस्मिता की तलाश करते हुए कंवल भारती मुक्ति संग्राम को जारी रहने की घोषणा करते हुए लिखते हैं:-

“बाबा तुम मरे नहीं हो/जीवित हो
हमारी चेतना में
हमारे संघर्ष में जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने
वह जारी रहेगा उस समय तक /जब तक कि हमारे मुरझाए पौधों के
हिस्से का सूरज उग नहीं आता।”^२

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर बाबा साहब का कथन उद्धृत करते हुए दलित अस्मिता की तलाश को सार्थक आयाम देते हुए दलितों को शेर बनने का आह्वान करते हैं:-

“बलि भेड़ बकरियों की दी जाती है,/कभी शेरों की नहीं
इसलिए बाबा ने कहा था, बेटो, शेर बनो,/ भेड़ बकरी नहीं”।^३

जिन्हें ये ज्ञान ही नहीं था कि उन पर जुल्म हो रहा है, वे भी इन्सान हैं, उन्हें बाबा साहब ने मनुष्यता का ज्ञान करवाया तो सर्वप्रथम उनके प्रति वंदना में सदियों से अवरुद्ध वाणी फूट पड़ी । कंवल भारती कहते हैं-

१ सूरजपाल चौहान, *क्यों विश्वास करूँ*, पृ. ३०.

२ माता प्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. १४५.

३ वही, पृ. १४६.

“जो मुक्ति संग्राम लड़ा था तुमने/वह जारी रहेगा उस समय तक
जब तक कि हमारे/मुझ्गाएँ पौधे के हिस्से का सूरज
उग नहीं जाता’।/वे उनसे ये भी अपेक्षा करते हैं-
रचो ऐसी पारमिताएँ/हम बन सके एक राष्ट्र”^१

‘डॉ. बाबा साहब अंबेडकर’ नामक कविता में कवि शेखर लिखते हैं-

“बाबा साहब/हमने अपनी माँगों के लिए निश्चित किया है
संवैधानिक मार्ग/आपका महापरिनिवारण स्थल बने प्रज्ञा स्मारक
यह हम दलितों की है न्यायोचित मांग”।^२

डॉ. चन्द्रकुमार वरठे का चिन्तन मार्क्स और बाबा अंबेडकर की विचारधारा से प्रेरित है। वे अपने वर्ग के भूखे बच्चों का बराबर खयाल रहते हैं। वे अपनी कविता ‘इंकलाब लिखता हूँ’ में लिखते हैं कि-

“एक गुलामी का सवाल/ है जिनकी आँखों में
उन बच्चों के लिए /ढूँढ कर/जवाब लिखता हूँ
वो/जो लड़ता रहा/उम्र भर/ रोटी के लिए
मैं उनकी भूख और प्यास का/ हिसाब लिखता हूँ।”^३

जिस तरह डॉ. अम्बेडकर ने वर्ण, असमानता, शोषण आदि के विरुद्ध लड़ा उसकी प्रेरणा लेकर कवि भी कलम उठाकर समाज की अनीतियों के विरुद्ध लड़ना चाहते हैं। ‘श्रद्धाजलि’ नामक कविता में ईश कुमार गंगानिया लिखते हैं-

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. २०९.

२ शेखर, *मायावती के गाँव में*, पृ. ४३.

३ डॉ. चन्द्रकुमार वरठे, *अधूरी चिट्ठी रोशनी की*, पृ. १२.-१३.

“उठा ली अपनी लेखनी/असमानता और शोषण के
सीने में घोंपने को, और/देने को श्रद्धांजलि
पिता और मानवता के मसीहा/दोनों को’।^१

कवि दलितों से अपनी कायरता को छोड़कर बाबा अंबेडकर का सपना साकार करने का आह्वान करता है। सूरजपाल चौहान दलितों को याद दिलाते हुए ‘करवाँ को आगे बढ़ाओ’ नामक कविता में लिखते हैं-

“देवताओं के दास बनना छोड़ दो तुम,/बानर नहीं, वीर बर्बरीक हो तुम,
सन्तोष तेरी व्याधि है, उसको अब त्याग दे,
प्रगति, परिवर्तन की इच्छा मन में पाल ले।
देखते ही देखते तस्वीर बदल जाएगी
भीम के इस स्वप्न को साकार बनाओं’।।^२

पूनम तुषामड़ ‘यह नीला रंग’ नामक कविता में बाबा अम्बेडकर के प्रति अपना विश्वास और आस्था को व्यक्त करते हुए कहती हैं-

“मेरी निगाहों में उतर आता है
तैरता हुआ नीला रंग/जो उस युग पुरुष के/नीले वस्त्रों से निकल
फैल जाता है चारों ओर”।^३

इस प्रकार की अनेक पंक्तियाँ हिन्दी साहित्य में आज उपलब्ध हैं। भारत के विभिन्न प्रांतों के साहित्य में भी अन्य विचारकों के साथ दलित साहित्य के मूल प्रेरणा स्रोत बाबा साहब के विचार ही प्रमुख रहा है। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि

१ ईश कुमार गंगानिया, *हार नहीं मानूँगा*, पृ. २८.

२ सूरजपाल चौहान, *कब होगी वह भोर*, पृ. ८१.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मत दो*, पृ. २७.

अंबेडकरवादी स्वर दलित कविता की केंद्रीय ऊर्जा है। बाबा अंबेडकर के बिना दलित कविता का अस्तित्व ही नहीं है। आज दलित कविता सिर उठाकर समाज में खड़े हैं, इसकी मूल प्रेरणा बाबा साहब अंबेडकर का विचार ही है।

३.१.८ दलित कविता का मानवतावादी स्वर और समतावादी स्वर

दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य समाज में समानता स्थापित करना और मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करना ही है। दलित कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन में सबसे प्रमुख स्थान समतावादी स्वर और मानवतावादी स्वर को है क्योंकि समाज वर्ण, जाति, धर्म के आधार पर विभाजित है। अतः इस भेद-भाव को मिटाकर मानव-मानव को पहचानना तथा समता दर्शन को स्थापित करना दलित कविता का मूल उद्देश्य बन जाता है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन से मानवीय मूल्यों एवं मनोभावों को सामने लाने की कोशिश कवियों ने किया है। दलित कविता के समाजशास्त्रीय अध्ययन में मानवतावादी स्वर और समतावादी स्वर पर आगे हम विश्लेषण करेंगे। मालिक-मजदूर एक बने, सवर्ण-दलित समान हो, सभी मानव एक हैं आदि विचार समतावाद के मूल में हैं, इससे बंधुता बढ़ेगी। आर्थिक विषमता, जातीय उच्च-नीचता, शिक्षा से वंचित रहना, नारी शोषण एवं उत्पीड़न आदि सामाजिक समस्याओं से मुक्ति चाहने वाले दलित कवि समता के पक्षधर हैं। जयप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में -

“धर्म धर्म न रहे/ जातियों के बाड़े बनकर रहे
समतामूलक समाज की चाहा मेरी मृगतृष्णा”^१

जातीयता, शोषण, अत्याचार से मुक्त दलित जीवन का सपना देखने वाला दलित कवि सामाजिक समता की स्थापना करना चाहता है। मानवतावाद, समता, बंधुता, समाजवाद के पक्षधर डॉ. टाकभौरे कहती हैं-

१ जयप्रकाश वाल्मीकि, *कहाँ है ईश्वर के हस्ताक्षर*, पृ. ६२.

“अन्याय- अधर्म का विरोध/मानवता को बचायेगा
समता-स्वतंत्रता, भाईचारा/घर-घर तक पहुँचायेगा”।^१

जयप्रकाश लीलवान ‘एकता’ नामक कविता में ‘एकता’ की ज़रूरत को बल देते हुए लिखते हैं-

“सदियों की प्यास/तुप्त होने के सिलसिले
शुरु हो जाएंगे/और यह/पूरा का पूरा राष्ट्र
ताज़गी की ऊर्जा में/नहीं उठेगा”।^२

समानता की भावना ही बंधुत्व की भावना को जन्म देती है जो मिलजुल कर काम करने, एक दूसरे के साथ जीने की प्रेरणा देती है। दलित कविता इस समानता का सूत्रधार है, इसलिए दलित कवि राम भरत पासी कहते हैं-

“श्रेष्ठता का भ्रम पालने वाले/बना लें चाहे जितनी जमातें
इतना तो तय है कि/मनुष्य की अब/ दो ही जमाते हैं”।^३

सामाजिक एकता का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय एकता एवं देश की अखंडता से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय एकता की बात करते हुए भी आर्थिक और भौगोलिक स्तर पर भारतीय समाज जातीय और उपजातीय टुकड़ों में विभक्त है। कंवल भारती ने इस स्थिति को यँ वर्णित किया है-

“धर्म के सिद्धांत/बना नहीं सके धार्मिक
मनुष्यता के आग्रह/नहीं बना सके मनुष्य

१ डॉ. सुशील टाकभौरे, *हमारे हिस्से का सूरज*, पृ.

२ जयप्रकाश लीलवान, *ओ भारत माँ! हमारा इंतज़ार करना*। पृ. १४७

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ३२.

राष्ट्र की अवधारणायें/पैदा कर गई अलगाव
वर्ण और जाति की व्यवस्थाओं ने
न स्वतंत्रता को स्वीकारा/न समता को
न बंधुता को”।^१

इस अहसास की स्थिति को दलित कवि श्यौराज सिंह बेचैन व्यक्त करते हैं-

“बड़ी उदास रात है/न मेल है न प्यार है
जलाओ दीप साथियों कि घोर अंधकार है
राग सब जुदा-जुदा/सुना रही हैं जातियाँ
जला हमारा खुले-दिल/न दीप हैं, न जातियाँ
एकता-समानता का/बेसुरा सितार हैं।”^२

डॉ. धर्मवीर एकता के निष्फल प्रयासों से उदास जनता की पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं-

“कितनी बार ‘जण-गण -मन’ पर सावधान खडा हुआ?
एकता ठूठ बनी रही, एक भी हरा पत्ता नहीं आया पर
गाय की तरह रम्भाती, बकरी की तरह मिमियाती रही
जब कार्यालय जले, रेलवे स्टेशन ढहे, डाकघर धधके
यू भग्न एकता, विश्रक्त भूगोल, फैला पडा है भारत”।^३

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती*, पृ. २०९.

२ श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल*, पृ. १४.

३ डॉ. धर्मवीर, *हीरामन*, पृ. ६५.

भारतीय समाज में प्रेम-भाव आपस में जातीय श्रेष्ठता के कारण कभी- कभी शत्रुता में बदल जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जाति के अस्तित्व को नकार कर एकता में जाति का अंत देखते हुए उसकी शक्ति को यू रेखांकित करते हैं-

“आदमी/जुटेगी भीड़
तब कौन बता पायेगा भीड़ की जाति
भीड़ की जाति पूछना वैसा ही है
जैसे नदी के बहाव को रोकना
समुद्र में जाने से!”^१

इस दलित कविता की पंक्तियाँ मनुष्य-मनुष्य की एकता की बात करती है और जातीयता को तोड़ कर जाति विहीन समाज के निर्माण का सपना देखता है।

दलित समाज में व्याप्त भूख, अशिक्षा, बेरोजगारी और गरीबी के अलावा जाति का दंश उसकी समूची प्रगति और विकास में बाधक है। जाति के व्याकरण को समझने और उसे सुलझाने की राह में कवि को एक ही दृष्टि दिखाई पड़ती है और वह है मानवीयता, सद्भावना, प्रेम और समानता के व्यवहार की दृष्टि। वह समूचे समाज को प्रेम का रास्ता दिखाना चाहता है। जयप्रकाश कर्दम ‘तिनका-तिनका आग’ के माध्यम से यह विचार व्यक्त करते हैं-

“प्रेम की कविता का/ बेतुका छंद
मनुष्यता की कमीज पर
जाति का पाबन्द”^२

१ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना*, पृ. ९-१०.

२ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी २००४*, पृ. १९७.

दलित कविता एक समतावादी समाज की स्थापना की आकांक्षा करती है। दलित कविता आदमी और आदमी में अन्तर नहीं देखती, उसकी दृष्टि में सभी मनुष्य एक समान है, लेकिन यथार्थ में ऐसा नहीं है दलित के साथ समाज में भेदभाव है, डॉ. देवेन्द्र दीपक लिखते हैं-

“हम आदमी हैं/तो सिर्फ इसलिए
कि हम आदमी जैसे दिखते हैं
आदमी के लिए जो नहीं था काम्य
हमने घृणा का वह/अतिरेक देखा है।/व्यवहार में व्यतिरेक देखा है।”^१

डॉ. एन. सिंह व्यवसाय की समानता के माध्यम से समत्वबोध का भाव जागृत करते हैं-

“हमारी दूकान पर बिकता है/जूता
और तुम्हारी दूकान पर/रामनामी
हमारे लिए जूते का महत्व वही है जो
तुम्हारे लिये है रामनामी का।
आओ समता का वह हार पकडे
एकता के सूत्र गढे साथ बढे”^२

भारतीय समाज में आज भी विसंगत वर्गभेद देखने को मिलता है। आज़ादी के छः दशक बाद भी दलितों की स्थिति दयनीय है। मनुवादियों की मानसिकता अभी भी बदली नहीं है, फलस्वरूप छुआछूत, गरीब, अमीर का भेद बरकरार है। कवि इसे दूर कर के भाईचारा स्थापित करना चाहते हैं-

१ देवेन्द्र दीपक, *हम बौने नहीं*, पृ. २४.

२ मता प्रसाद, *दलित साहित्य का दशा और दिशा*, पृ. १४७.

“करे कुछ एहसास/आपस में विश्वास
और बन्धुत्व के साथ, /अपना ले भाईचारा”^१

आरक्षण और बराबरी की हिस्सेदारी के मुद्दे पर कटाक्ष करते हुए जयप्रकाश कर्दम कहते हैं-

“तुम्हारा आरक्षण उचित है/और मेरा अनुचित
अब हर क्षेत्र में होगी/समान रूप से हिस्सेदारी
शासन, प्रशासन से लेकर/मैला ढोने, जूती गांठने
और झाड़ू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता”^२

वास्तव में समतावादी समाज की स्थापना करनी है तो सामाजिक व्यवस्था का आधार बदलना होगा। वर्ण के आधार पर समता आवश्यक है। जब वर्ण के आधार पर समता होगी, तभी वर्ण के आधार पर समता सम्भव है और तभी वास्तव में एक समतावादी समाज की स्थापना हो सकती है। दलित कवि इस व्यवस्था के पिंजरे को तोड़ देना चाहते हैं। कवि कुसुम वियोगी लिखते हैं-

“अब तुम्हारी व्यवस्था के पिंजरे/तुम्हें ही मुबारक
अब तो/मैं बुनकर ही रहूँगा
सामाजिक पुनः संरचना की चादर
समता के धागों से”^३

१ जसराम हरनेटिया, *माटी के पूत*, पृ. १.

२ जयप्रकाश कर्दम, *गूँगा नहीं था मैं*, पृ. १७.

३ डॉ. कुसुम वियोगी, *टुकड़े टुकड़े दंश*, पृ. ५४.

कवि स्वतंत्रता दिवस को तब तक अर्थहीन मानते हैं जब तक समता नहीं है,
सामाजिक स्वतंत्रता नहीं है-

“हम आज भी ज़रूरी समझे हैं
सामाजिक स्वतंत्रता को
हमारे लिए अर्थहीन है उस देश की आज़ादी
जहाँ करोड़ों मनुष्य जीते हैं गुलामी की जिन्दगी.....”^१

समाज में छोटे-बड़े का भाव है। अहंकार का नशा कभी समता की ज़मीन पर
उतरने ही नहीं देता। यदि समता की ज़मीन पर चलना है, तो पहले नशा उतारो- कवि
भारती कहते हैं-

“तुम कभी नहीं उतरे नीचे उस ज़मीन पर
जो है ज़मीन मानवता की/जो ज़मीन मैत्री की
करुणा और भाईचारों की/एकता की”^२

आज दलितों का एक मात्र लक्ष्य है समाज में समानता लाना। कवि राज
वाल्मीकि ‘लक्ष्य’ नामक कविता में लिखते हैं-

“तुम्हारा भी है एक ही लक्ष्य
जिसे हर जागरूक दलित है जानता
कि एक ऐसे समाज का निर्माण/जहाँ हो
स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व एवं समानता”^३

१ कंवल भारती, *तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?* पृ. ३५.

२ सी. बी. भारती, *नशा, आक्रोश*, पृ. ५७.

३ विमल थोरात, *सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर*, पृ. ९८.

डॉ. शत्रुघ्न कुमार 'वाह रे दुमँहे' कविता में मानवता की बात करते हैं। अपने छल रूपी मुखौटे को हटा कर मनुष्य से प्रेम का व्यवहार करो। जाति-धर्म में कुछ नहीं रखा है। दो मँह वाले रास्ते को छोड़कर मानवता का पाठ सीखें-

“झोपड़ो दलितों और निरीहों के/चमकेगी छोटी-सी किरण
मानवता का तुममें भी उस दिन
और जान सकोगे थोड़ा सा अर्थ/तुम भी मानवता के”^१

डॉ. मेघसिंह 'बादल' समता और न्याय पाने के लिए जेहाद और अदालत के दो मार्ग उचित मानते हैं। 'मैं एक अछूत हूँ' शीर्षक कविता में आपने लिखा है कि-

“जुल्म के खिलाफ एक आवाज़ है
जो अमन-चैन चाहती है/ समता और न्याय के लिए
मुझे कड़ी से कड़ी अदालत में/जाना पड़े तो जाऊँगा”^२

प्रोफसर श्यौराज सिंह बेचैन जाति और वर्ण के नाम पर पशु बन रहे आदमी को आदमी बने रहने की सीख देते हैं, ताकि वह अपने जैसे दूसरे आदमी के साथ आदमियतमूलक व्यवहार कर सके। वे मानव को संदेश देते हैं -

“सब हो समान/असमानता हटाओं रे/भूल जाओ
आज से अछूत या सछूत भेद/आदमी हो
आदमी का रूप अपनाओं रे”^३

समता के अभाव में दलितों का शोषण होता है। प्रो. दामोदर मोरे भेदभाव का विरोध करके सभी में समता की माँग करते हैं, वे लिखते हैं-

१ डॉ. शत्रुघ्न कुमार, *अग्निशिखा*, पृ. १८.

२ डॉ. मेघसिंह बादल, *सौलाव*, पृ. १९.

३ प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन, *नई फसल*, पृ. १७.

“हमें कुछ नहीं चाहिए/थोड़ी-सी इन्सानियत हमें मिले
बाबू, ऐसी व्यवस्था करो/हो श्मशान हमारे आपके एक”^१

दलित साहित्य के श्रेष्ठ समीक्षक और कवि डॉ. एन सिंह, सुखी मानवता के जागरण पर कुछ इस तरह विचार करते हैं-

“आज नहीं तो कल जरूर
ये भूखी मानवता जागोगी/अपनी सारी मेहनते जाएगी।
अपनी सारी मेहनत का/तुमसे ज़रूर हिसाब मांगेगी”^२

‘एक मुट्ठी आसमां’ नामक कविता में पूनम तुषामड़ अपने हिस्से का ज़मीन की माँग करती है। अपने पूर्वजों ने सदियों से उस ज़मीन में पसीना बहाया है, लेकिन फसल का मालिक हमेशा दूसरे लोग बनते रहे। कवयित्री कहती हैं-

“मुझे चाहिए समता और सम्मान/नहीं चाहिए।
तुम्हारी दया, करुणा और सहानुभूति ”^३

भारतीय समाज में जातिवाद और ऊँच-नीच जो हमें आपस में बांटते हैं। ‘वे बांट देना चाहते हैं’ नामक कविता में रजनी तिलक मनुवादी ब्राह्मणवाद को मिटाने के लिए दलित एकता और समता भाव को आवश्यक मानती हैं। वे कहती हैं-

“लड़ना है हमें असमानता से
गढ़नी है भाषा, बढाना है विज्ञान,/ तभी बनेगा जाति विहीन समाज”^४

१ प्रो. दामोदर मोरे, *पलकें सुलग रही है*, पृ.

२ डॉ. कालिचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. १०७.

३ पूनम तुषामड़, *माँ मुझे मत दो*, पृ. ७४.

४ रजनी तिलक, *पदचाप*, पृ. १७.

‘हाथ मिला आकर ले मेल’ नामक कविता में सूरजपाल चौहान’ हमें समता और भाईचारे की ओर उन्मुख कराते हुए कहते है-

“ऊँच-नीच और छुआछूत का
मत खेलो अब तुम यह खेल
प्यार के दीपक जला डगर में
हाथ मिला आ कर ले मेल”।^१

कवि हमसे यही कह रहे हैं कि सब कुछ भूलकर हम सब मिलके एक नया समाज की रचना करेंगे, जहाँ समानता एवं भाईचारा ही प्रमुख रहें।

दलित कविता समता या मानवता की बात करती है। आज के संदर्भ में ये दोनों हम से अलग जा रहे हैं। हमारे मन में स्वार्थ की पूर्ति की चिंता प्रबल होती रहती है। इस तरह मानव-मानव को न पहचान कर उसे सताते रहते हैं। इस संदर्भ में दलित कविता मानुषिक मूल्यों को लेकर सामने खड़ी है। हमारे दिल और दिमाग में मानवता एवं समानता की चिंगारी फैला रही है। हमें ‘मनुष्य’ का वास्तविक अर्थ को समझाकर सहजीवियों से प्रेम, ममता, सहिष्णुता, भाईचारा, करुणा आदि मूल्यों से आदमियत की पहचान कराती है।

३.१.९ निष्कर्ष

जागरूक समाज वह है जो अपनी स्थिति को समझता है और उस स्थिति से आगे प्रगति करने का प्रयत्न करता रहता है। इस तरह जागरूक साहित्यकार भी अपने समाज की भलाई के लिए लोगों को साहित्य के माध्यम से जागृत करते रहते हैं। अतः वे निडर, निर्भीक होकर समाज को विशेषकर समानता और सम्मान से पूर्ण जीवन जीना

१ सूरजपाल चौहान, वह दिन ज़रूर आएगा, पृ. ३९.

सिखाते हैं। दलित कविता भी दलित समाज को जागरूक करते हुए उन्हें प्रगति के पथ पर ले जाते हैं। समयानुसार समाज में नये विचार एवं सिद्धान्त आते रहे हैं। मैकिल फूको ने यह स्थापित किया कि शक्ति उनके पास होती है जिनके पास तार्किक ज्ञान होता है। अतः मनुष्य के लिए ज्ञान और शक्ति की आवश्यकता आज बढ़ती जा रही है। यह दोनों हासिल करने की स्वतंत्रता मनुष्य के लिए ज़रूरी है।

दलित कविता में जो विषय है वही उसकी वस्तु है। प्रस्तुत अध्याय में, वर्णव्यवस्था, समाज, संस्कृति, परंपरा, राजनीति, नारी, अंबेडकरवादी विचारधारा, मानवतावाद तथा समतावाद आदि दलित कविता के मुख्य पहलुओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। दलित कविता का मूल स्वर वर्णव्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध, प्रतिशोध तथा क्रांति उत्पन्न करके उसे समाज से मिटाना है। क्योंकि वर्णव्यवस्था मानवतावाद तथा समतावाद के खिलाफ है। दलित कविता के सामाजिक स्वर में समाज में दलितों के प्रति हो रहे शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि से अवगत कराते हुए एक नए समाज की स्थापना करने की प्रतिबद्धता है। दलित कविता का सांस्कृतिक स्वर अधिक प्रबल है। क्योंकि दलितों का जीवन, संस्कृति एवं परंपरा से जुड़ा हुआ है। वे सदियों से इस धरती के रक्षक हैं। समाज के वर्चस्ववादी चिंतकों ने ही संस्कृति को जीवन की समग्र पद्धति के रूप में माना है। इस संदर्भ में ग्राम्शी का मत प्रासंगिक हो जाता है कि साहित्य के इतिहास को संस्कृति के इतिहास के अंग के रूप में अध्ययन करना होगा। तभी हम मानव की आदिम संस्कृति या लोक संस्कृति को समझेंगे; लोक मानस को समझेंगे, क्योंकि संस्कृति जनसमूह की उपज है। इसमें ही उस जनमानस की भाषा मौजूद है। इसी प्रकार इतिहास में परंपरा को खोजते हुए उसकी पुनर्रचना भी करना है; क्योंकि परंपरा का आधार लोक भी है; शास्त्र भी है। परंपरा की खोज इसलिए है कि भारतीय परंपरा वेद-पुराण और शास्त्रों से जुड़ी हुई है। भारत में ये वेद पुराण की परंपरा ही नहीं; जन-जाति या क्षेत्रीय परंपराएँ भी हैं। इस तरह की लघु परंपराओं को समाज से हटाया

या मिटाया गया है। इस तरह की जन-जातियों की अलग पहचान, अलग इतिहास, अलग संस्कृति तथा अलग भाषा भी है जो दलित कविता का प्रमुख आधार है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि ये परंपरा, संस्कृति, मूल्य, जातीय भावना एक तरह से मानसिक पुनर्रचनाएँ होती है। इस पुनर्रचना की प्रक्रिया ज्ञान, सामाजिक तथ्यों और ऐतिहासिक यथार्थ से कटकर नये मिथक, बिंब तथा प्रतीकों को अपना लेती है। विशेषकर आधुनिक संदर्भ में ऐसी एक दृष्टि दलित कविता की विषय वस्तु और शिल्प में देख सकते हैं।

दलित कविता अतीत तथा वर्तमान समय में अपने जीवन और परिवेश के साथ गहराई से जुडी है। उसकी प्रांसगिकता भी यही है। यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की दलित कविता व्यापक रूप में दलित वर्ग की पहचान एवं अस्तित्व की तलाश की कविता है। वह दलितों को समाज से अपने अधिकारों को छीन लेने का संदेश भी देती हैं। सही अर्थ में दलित कविता पारम्परिक रूढ़िग्रस्त सामाजिक सम्बन्धों में क्रान्ति एवं आदमी को आदमी होने का हक दिलाने को प्रमुखता देती है। जाति एवं वर्णव्यवस्था को नकार कर समाज में समतावाद की स्थापना करना चाहती है। दलित कविता में चित्रित जीवन स्वानुभूति का प्रमाण है। इसमें शोषण तथा अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की आवाज़ है।

कविता साहित्य का बीज है तथा बड़े एवं गंभीर विचार को कुछ पंक्तियों में समेटने की कला है। दलित कविता घृणा एवं नफरत के खिलाफ लिखी गयी है। मोहनदास नैमिशराय का कहना ठीक है कि “दलित कविता एक सामाजिक आंदोलन का सांस्कृतिक प्रतिफलन है। अन्य काव्य धाराओं और साहित्यिक परंपराओं की अपेक्षा उसका सीधा संबंध जीवन की ज़मीन से हैं”^१। दलित कविता ने अपनी ऊर्जा चेतना अन्य विचारकों की तुलना में डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के विचार एवं दर्शन से सबसे

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*, पृ. ५८।

अधिक प्राप्त की है। भारतीय समाज व्यवस्था की असमानता पर आधारित जीवन की विसंगतियों एवं विषमताओं के बीच से दलित कविता का जन्म हुआ है जो सामाजिक बदलाव तथा जीवन मूल्यों की पक्षधर है। इसलिए दलित कविता की वस्तु स्वानुभूति पर आधारित है। आज हमें दलित स्मृति के शक्ति-दर्शन को रूपायित करना है। 'अप्प दीपो भव' दलित अपने दीपक को जलाने लगे हैं। स्वत्व बोध को पहचान लिया है। अतः हिन्दी दलित कविता, दलित स्वत्व बोध के निर्माण में अपना सर्जनात्मक योगदान दे रही है। इस तरह दलित कविता अपने सामाजिक योगदान प्रदान करते हुए समाजशास्त्र को अस्तित्व प्रदान करती है।